प्रभाकर परीक्षा की सहायक पुस्तक

आलोचना-समुच्चय

(लेखक—श्री रामकृष्ण शुक्ल एम ए 'शिलीमुख'
प्रोफेसर, महाराजा कालिज, जयपुर)

इसमें विद्वान लेखक ने हिन्दी के प्राय सब प्रमुख महाकवियों—कबीर, सूर, जायसी, तुलसी, मीरा, केशव, बिहारी, भूषण, हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण और प्रसाद—पर गंभीर आलोचनात्मक निबंध लिखे हैं, जिनमें कवियों के काव्य, और उनकी विशेषताओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है, तथा कवियों की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है। विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षा के विद्यार्थियों, विशेषत प्रभाकर के परीक्षार्थियों के लिए आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य पुस्तक। पृष्ठ २६०—मूल्य २)

छन्द-रत्नावली की कुंजी

इसमें छन्द रत्नावली में आए सब छन्दों को सरल और सुबोध भाषा में समझाया गया है। मूल्य ।=) मात्र।

हिंदी भवन, लाहौर

प्राचीन गद्य

सम्पादक—

सन्त गोकुलचन्द

हिन्दी भवन

लाहौर

दूसरा

जून १९३९

प्रकाशक—
चन्द्रगुप्त विद्यालंकार
विश्व साहित्य ग्रन्थमाला
हस्पताल रोड, लाहौर

मुद्रक—
लाला प्रकाशचन्द
विरजानन्द प्रेस
मोहनलाल रोड, लाहौर

विषय-सूची

पृष्ठ

दो चार प्रारम्भिक शब्द

हिन्दी-उत्पत्ति का इतिहास

संसार परिवर्तनशील है। उसकी प्रत्येक वस्तु अनादि काल से अदल बदल रही है। किसी वस्तु की सत्ता के इतिहास सम्बन्धी खोज करने से पता लगेगा कि जो रूप उसका वर्तमान में है पहले उसका वह रूप न था, तथा इस रूप में आने से पूर्व उसे अनेकानेक रूप बदलने पड़े होंगे।

मनुष्य की आकृति को ही लीजिए। डार्विन के सिद्धान्त के अनुसार उसमें कितना परिवर्तन होकर यह आकृति बनी है। कहाँ बन्दर और कहाँ मनुष्य! कितना अन्तर है!

जो सिद्धान्त अन्यान्य पदार्थों में लागू है, भाषा में भी वही लागू है। उसका इतिहास जटिल तो है सही, परन्तु चित्ताकर्षक और मनोरंजक भी है। जो भाषा जितनी प्राचीन होती है उसमें उलट फेर भी अधिक होते हैं।

भारतवर्ष की सभ्यता प्राचीनतम है, अत इसकी भाषायें भी प्राचीनतम हैं। इसी कारण इन्हें विकास सिद्धान्तानुसार कई

परिस्थितियों में से गुज़रते और परिवर्तन प्राप्त करते यह स्वरूप मिला होगा।

यह स्मरण रहे कि अन्यान्य देश और जातियों के राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिवर्तनों का प्रभाव देश और जातियों पर पड़ने के साथ साथ उनकी भाषाओं पर भी पड़ता है। भिन्न २ जातियों से सम्पर्क होने पर उनकी सभ्यता और आचार विचारों में विनिमय, संघर्ष और आदान प्रदान तो होते ही हैं, साथ ही उनकी भाषाओं के मिश्रण से नये नये शब्द बन जाते हैं और कभी कभी भाषा में भी नयापन आ जाता है।

इस लिए भारत की भाषाओं के प्राचीनतम और वर्तमान रूप में यदि इतना महान् अन्तर हो गया हो तो इसमें कोई विस्मय की बात नहीं। भाषाओं की परिवर्तन गति की समता एक ऐसी नदी से की जा सकती है जो हिमालय के शुद्ध स्रोत से निकल सहस्रों कोसों का मार्ग पार कर समुद्र में गिरी हो। स्रोत से निकलते ही उसका जो शुद्ध रूप होता है उसकी तुलना उसके उस कलुषित रूप से जो उसका समुद्रपतन के समय होता है—हो सकती है? इन दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर होता है। यही दशा भाषाओं की होती है। उत्पत्ति के समय उनका जो रूप होता है, वह हज़ारों वर्षों के बाद नहीं रहता।

उदाहरणार्थ-संस्कृत को ही लीजिये। संसार की प्राचीनतम पुस्तक वेद हैं। उनकी भाषा और अर्वाचीन काल की संस्कृत

भाषा मे कितना भेद है। बीच बीच में ब्राह्मणग्रन्थो, उपनिषदों, पुराण और आख्यायिकाग्रन्थों की भाषाओं से सस्कृत का विकास किस गति से हुआ है, इसका ज्ञान हो सकता है।

पीछे कहा जा चुका है कि अन्य देश और जातियों के संमिश्रण से नयी भाषाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। सस्कृत क साथ भी ऐसे ही हुआ। वैदिक भाषा से सस्कृत उत्पन्न हुई और अनार्यों के सपर्क से प्राकृत भाषाएँ बनीं।

यह तो सर्वसम्मत बात है कि प्रतिदिन के व्यवहार और बोल चाल की भाषा में जितना शीघ्र परिवर्तन होता है उतना शीघ्र साहित्य की भाषा मे नहीं होता। जब उपरोक्त प्राकृत भाषा भी सस्कृत की तरह साहित्य मे प्रयुक्त होने लगी तो और शिष्टसमुदाय क पठन-पाठन के ग्रन्थों की भाषा बन गई, तब बोलचाल की भाषा का प्रवाह स्वतन्त्र रूप से अपनी चाल चलता रहा। उसमे काल-क्रम से कई परिवर्तन भी होते रहे। इस भाषा को 'अपभ्रंश' सज्ञा दी गई। हिन्दी इसी 'अपभ्रश' की पुत्री मानी गई है।

भिन्न भिन्न कालों में विकासवश हिन्दी में जो भेद होते रहे हैं तदनुसार इसके मुख्य चार प्रकार हैं—राजस्थानी, अवधी, व्रजभाषा और खडीबोली। एक बुन्देलखडी भाषा भी मानी गई है, पर वह व्रजभाषा के ही अन्तर्गत है।

१—**राजस्थानी** की चार बोलियाँ हैं—मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाड़ी और मालवी।

मारवाड़ी—मारवाड़ी का पुराना साहित्य डिंगल नाम से प्रसिद्ध है। दादूदयाल और उनके शिष्यों की वाणी जयपुरी भाषा में है।

मेवाती और मालवी में कोई साहित्य नहीं—कम से कम अब तक मिला नहीं। मेवाती व्रजभाषा से और मालवी बुन्देलखण्डी से बहुत मिलती जुलती है।

२—अवधी—अवधी भाषा का प्रचार अवध, आगरा, बुन्देलखण्ड, छोटा नागपुर और मध्य प्रदेश के कई भागों में है। अवधी की तीन बोलियाँ मानी गई हैं—अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी।

अवधी और बघेली में कोई विशेष अन्तर नहीं, परन्तु छत्तीसगढ़ी पर मराठी और उड़िया का प्रभाव पड़ने से यह अवधी से कुछ भिन्न हो गई है।

३—व्रजभाषा—व्रजभाषा शौरसेनी प्राकृत और शौरसेनी अपभ्रंश से निकली है। इसका मुख्य केन्द्र व्रजमण्डल है, किन्तु इसका प्रचार दक्षिण की ओर आगरा, भरतपुर, धौलपुर और करौली में तथा ग्वालियर के पश्चिमी भाग और जयपुर के पूर्वी भाग में है और उत्तर की ओर गुड़गाँव जिले के पूर्वी भाग तक बोली जाती है।

इसका केन्द्र स्थान मथुरा है और वहीं की भाषा शुद्ध व्रज भाषा है। इस स्थान से यह जिधर जिधर चली है वहीं वहीं के संसर्ग से इसके रूप में कुछ कुछ विकार होते गये हैं।

४—खड़ी बोली—खड़ी बोली का इतिहास बहुत जटिल और रोचक है। यह भाषा मेरठ के चारों ओर बोली जाती थी, पर भारत में मुसलमानों के आक्रमण और राज्य स्थापन के कारण उन्होंने दिल्ली की भाषा को, जो उस समय उनके शासन का केन्द्र थी, अपनाया। पहले पहल अरब, फारस और तुर्किस्तान से आये हुये सिपाहियों को परस्पर भाव-विनिमय में बड़ी कठिनता होती थी। न वे यहाँ की 'हिन्दवी' को समझते थे और न भारतीय उनकी भाषाओं को। परिणाम वही हुआ जो साधारणतः हुआ करता है। 'दोनों' ने एक दूसरे की भाषाओं में कुछ कुछ शब्द सीख कर किसी प्रकार आदान-प्रदान का रास्ता निकाला। यों मुसलमानों की उर्दू (छावनी) में पहले पहल एक खिचड़ी पकी, जिसमें दाल चावल सब खड़ी बोली के थे, सिर्फ नमक आगन्तुकों ने मिलाया। आरम्भ में तो वह निरी बाज़ारू बोली थी, पर धीरे-धीरे व्यवहार बढ़ने पर और मुसलमानों को यहाँ की भाषा के ढाँचे का ठीक ज्ञान हो जाने पर इसका रूप कुछ कुछ स्थिर हो चला। मुसलमानों ने अपनी संस्कृति के प्रचार का सबसे बड़ा साधन मान कर इस भाषा को खूब उन्नत किया और जहाँ फैलते गये वे इस भाषा को साथ लेते गये। उन्होंने इसमें केवल फारसी तथा अरबी के शब्दों की ही उनके शुद्ध रूप में अधिकता नहीं कर दी, बल्कि उसके व्याकरण पर भी फारसी, अरबी व्याकरण का रंग चढ़ाना आरम्भ कर दिया। इस अवस्था में

इसके दो रूप हो गए, एक तो हिन्दी ही कहलाता रहा, और दूसरा उर्दू नाम से प्रसिद्ध हुआ। दोनों के प्रचलित शब्दों को ग्रहण करने पर व्याकरण का सङ्गठन हिन्दी का ही अनुसार रख कर, अँगरेजों ने इसका तीसरा रूप 'हिन्दुस्तानी' बनाया। अतएव इस समय इस खड़ी बोली के तीन वर्तमान रूप हैं—(१) शुद्ध हिन्दी—जो हिन्दुओं की साहित्यिक भाषा है और जिसका प्रचार हिन्दुओं में है। (२) उर्दू—जिसका प्रचार विशेषकर मुसलमानों में है और जो उनके साहित्य की और शिष्ट मुसलमानों तथा कुछ हिन्दुओं की घर के बाहर की बोल चाल की भाषा है। (३) हिन्दुस्तानी—जिसमें साधारणत हिन्दी, उर्दू दोनों के शब्द प्रयुक्त होते हैं और जिसका सब लोग बोलचाल में व्यवहार करते हैं। (हिन्दू और मुसलमानों की सार्वदेशिक भाषा के सम्बन्ध में अड़चन को मिटाने के लिए हिन्दुस्तानी को ही उस पद पर प्रतिष्ठित करने को आजकल जोर दिया जा रहा है।)

हिन्दी साहित्य विकास

साहित्य ही किसी देश की जनता की मनोवृत्ति का प्रतिबिंब होता है। अत मनोवृत्ति में समय समय पर परिवर्तन आने पर साहित्य में भी वैसा परिवर्तन आता रहता है। इसलिए साहित्य की प्रगति का पूरा ज्ञान नहीं हो सकता जब तक जनता की मनोप्रगति का पूर्ण ज्ञान न हो। हर समय में लोगों में किसी न किसी विचार प्रवाह का प्राबल्य रहता है, अत उस समय उनकी मनो-

वृत्ति उसी-मुख होकर उधर ही चलती है। इन सब बातों को विचार कर विद्वानों ने हिन्दी भाषा व समय को इन चार भागों में बाँटा है —

आदि काल, (वीरगाथाकाल, संवत् १०५०—१३७५)

पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, संवत् १३७५—१७००)

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल, संवत् १७००—१९००)

आधुनिक काल (गद्यकाल, संवत् १९००—१९८४)

यह समय-विभाग रचनाओं की विशेष प्रवृत्ति के अनुसार किया गया है, इसका अर्थ यह न समझना चाहिये कि किसी विशेष काल में दूसरे प्रकार की रचना होती ही न थी। वीरगाथा-काल में भी कई भक्ति के कवितामन्थ मिलेंगे। इसी तरह भक्ति-काल या दूसरे कालों में भी वीरगाथा पर अच्छे-अच्छे कवितामन्थ मिलेंगे। आशय यह है कि उस समय उस प्रकार की रचनाओं का बाहुल्य होता था।

यहाँ पर एक बात और बताना आवश्यक है। प्राचीनतम समय से ही जनता की साहित्यिक भाषा प्रायः पद्यमयी ही रही है। हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ वेद पद्य में हैं। इनके अतिरिक्त अठारहों पुराण, रामायण, महाभारत, स्मृतियाँ आदि सभी आर्षग्रन्थ पद्य में हैं। हिन्दी के प्राचीनतम ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' आदि पद्य में ही हैं।

ईसा के बाद लगभग एक हज़ार वर्ष तक कोई गद्यग्रन्थ नहीं उपलब्ध होता।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि लोगों की बोलचाल की भाषा भी पद्यमयी थी। वे लोग भी बोलचाल में गद्य का प्रयोग वैसे ही करते थे जैसे हम करते हैं।

आदि काल (वीरगाथाकाल)

पीछे कहा गया है कि अपभ्रंश से हिन्दी का जन्म हुआ। अपभ्रंश अवस्था से हिन्दी के अभ्युदय का काल संवत् १०५० के लगभग माना गया है।

यह समय ऐसा था कि कवियों को राजाश्रित हो कर अपने आश्रयदाता की वीरताओं का वर्णन करना पड़ता था। बड़ी बड़ी सभाओं में उनकी वीरगाथाएँ पढ़ी जाती थीं। उन्हीं पर कवियों को बड़े-बड़े पारितोषिक वितरण होते थे।

ऐसा भी मालूम हुआ है कि राजकवि युद्धक्षेत्र में जाकर स्वयं तलवार चलाते थे और सैनिकों को वीरकविताएँ सुना कर उत्तेजित करते थे।

इस काल के कुछ मुख्य कवि ये हैं—खुमानरासो, बीसलदेव रासो, चन्द बरदाई आदि।

पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल)

भारत में जब मुसलमान राज्य प्रतिष्ठित हो गया तो हिन्दुओं के हृदयों में से आत्म गौरव, अभिमान और देशीयता के भाव उठ गये। इसलिए वीरगीतों के गाने की न उन्हें स्वतन्त्रता थी और न उत्साह था। किन्तु कवि के हृदयोद्‌गार रुक नहीं सकते।

उन्होंने निकलने का दूसरा मार्ग खोज लिया। उन्होंने भगवान् की ओर मुख किया और उसे ही अपनी विपदाओं का निवारक मान उसकी भक्ति में सान्त्वना प्राप्त करने लगे और वे कर ही क्या सकते थे! हिन्दी के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवि इसी काल मे हुए हैं। उनमें कुछ मुख्य ये हैं—कबीर, गुरु नानक, दादूदयाल, मलिक मुहम्मद जायसी, गोस्वामी तुलसीदास, नाभादास, सूरदास, रसखान, रहीम आदि।

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)

इस समय हिन्दीकाव्य पूर्ण प्रौढ हो चुका था। उस समय से पूर्व प्रचलित भक्तिकाव्य-गंगा का प्रवाह अब भी लाखों करोडों नर-नारियों की ज्ञान-पिपासा को शान्त कर रहा है। तुलसीदास और सूरदास अब भी काव्यनभोमण्डल पर शशी और सूर की तरह देदीप्यमान हैं।

हिन्दी की ऐसी प्रौढ अवस्था में इसकी स्वतन्त्र चालों को रोकने के लिए इसे रस, अलकार तथा छन्द आदि की शृङ्खलाओं में बाँधने की आवश्यकता पडी। इसके पूर्व भी स० १५६८ मे कवि कृपाराम रस का कुछ निरूपण कर चुके थे। इसके पश्चात् १६१५ में रामभूषण और अलङ्कार-चन्द्रिका नाम की दो पुस्तकें निकलीं। उनमें अलङ्कारों का निरूपण था। इस प्रकार कतिपय और ग्रन्थ भी इन्हीं विषयों पर निकलते रहे, किन्तु रीतिग्रन्थों का अखण्डित और अविरल प्रवाह

इसके भी पहले—

१४०७ में गोरखनाथ जी ने 'सिष्ट प्रमाण' नाम का ग्रन्थ गद्य मे रचा। इसमें से कुछ अंश दिया जाता है—

"सो यह पुरुष सपूर्ण तीर्थस्नान करि चुकौ अरु सपूर्ण पृथ्वी ब्राह्मननि कौ दै चुकौ अरु सहस्र यज्ञ करि चुकौ अरु देवता सर्व पूजि चुकौ अरु पितरनि कौ सतुष्ट करि चुकौ स्वर्गलोक प्राप्त करि चुकौ जा मनुष्य को मन छनमात्र ब्रह्म क विचार बैठो।"

हिन्दी म यह प्रथम गद्यग्रन्थ उपलब्ध हुआ है। इसलिए गोरखनाथ जी को हिन्दी का प्रथम गद्यलेखक माना गया है। गोरखनाथ जी के शिष्यों के लिखे कई अन्य ग्रन्थ—गोरखनाथ की बानी, गोरखनाथ क पद, ज्ञानसिद्धान्त जोग—आदि मिलत है। जिनका निर्माणकाल पन्द्रहवी शताब्दी का आरम्भ है। उनमे से कुछ अश नीचे उद्धृत हैं—

"श्री गुरु परमानन्द तिनको दण्डवत है। हैं कैसे परमानन्द, आनन्द स्वरूप है सरीर जिन्हि को। जिन्हि क नित्य गावते सरीर चेतन्नि अरु आनन्दमय होतु है। मैं जु हौं गोरिष अरु मछन्दर नाथ को दण्डवत करत हौं। हैं कैसे व मछन्दरनाथ, आत्म जोति निश्चल है अन्तहकरन जिनके अरु मूलद्वार तैं छह चक्र जिनि नीकी तरह जानैं।"

इसके पश्चात् श्री वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी विट्ठलदास

का 'शृङ्गार रस मण्डल' नाम का गद्यग्रन्थ मिला है। इनके गद्य का नमूना यह है—

"प्रथम की सखी कहतु है। जो गोपीजन के चरण विषै सेवक की दासी करि तो इनको प्रेमामृत में डूबिकै इनके मन्दहास्य ने जीते हैं। अमृतसमूह ताकरि निकुंज विषै शृंगाररस श्रेष्ठ रसना कीनो सो पूर्ण होत भई।"

इन्हीं विट्ठलदास के पुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ के तीन ग्रन्थ सम्वत् १६२५ और १६५० के बीच के बने मिले हैं। उनके नाम हैं—चौरासी वैष्णवों की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता और वनयात्रा। उदाहरण के लिये नीचे लिखा अंश देखिये—

"सो श्री नन्दगाम में रहतो हतो। सारस्वत ब्राह्मण शास्त्र पढ्यो हतो। सो जितने पृथ्वी पर मत हैं सबको खण्डन करतो, ऐसो वाको नेम हतो याही तें सब लोगन ने वाको नाम खण्डन पार्यो हतो। सो एक दिन श्री महाराज प्रभुजी के सेवक वैष्णव की मण्डली में आयो। सो खण्डन करन लाग्यो। वैष्णवन ने कही—जो तेरो शास्त्रार्थ करनो होवै तो पण्डितन के पास जा, हमारी मण्डली में तेरे आयबे को काम नहीं। इहाँ खण्डन मण्डन नाहीं। भगवद्वार्ता को काम है। भगवद्यश सुननो होवै तो इहाँ आवो।"

इन्होंने अपनी भाषा में ब्रजभाषा के अतिरिक्त अरबी, फारसी, मारवाड़ी, गुजराती, पञ्जाबी आदि का भी निसङ्कोच प्रयोग किया है।

संवत् १६०७ में गंग ने 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' नामक पुस्तक लिखी। इसका कुछ उद्धरण ऊपर आ चुका है।

इसके अनन्तर 'भक्तमाल' के प्रणेता नाभादास जी से रचित 'अष्टयाम' मिला है। उसकी भाषा इस प्रकार की है—

'तब श्री महाराज कुमार प्रथम श्री वशिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भए। फिरि अपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करते भए। फिर श्रीराजाधिराज जू को जोहार करिकै श्री महेन्द्रनाथ जी के निकट बैठत भए।"

इसके बाद १६८० में लिखी हुई जटमल कवि की 'गोरा बादल की कथा' गद्य में मिलती है। उसका कुछ अंश उद्धृत है—

"गोरे की आव्रत आनसा वचन सुनकर आपने पावन्द की पगड़ी हाथ में लेकर वाहा सती हुई सो सिवपुर में जाके वाहा दोनों मेल हुए। गोराबादल की कथा गुरू के बस सरस्वती के महरबानगी से पूरन भई तिस वास्ते गुरू कूँ व सरस्वती कूँ नमस्कार करता हूँ।"

सं० १६७५ में वा इसके लगभग वैकुंठमणि ने 'बैशाख महात्म्य' और 'अगहन महात्म्य' नाम की पुस्तकें लिखीं। उनकी भाषा इस प्रकार की है—

"एक समय नारद जू ब्रह्मा की सभा तैं उठिकै सुमेर पर्वत को गए। पुनि गंगा जी को प्रवाह देखि पृथ्वी विषै आए तहां मन तीरथन को दरसन करत भए।"

इन पुस्तकों के अतिरिक्त कई संस्कृत और हिन्दीग्रन्थों की टीकाएँ हिन्दी भाषा में लिखी गई। उनकी भाषा न परिष्कृत थी और न व्यवस्थित। उनमें अर्थों और भावों को अच्छी तरह प्रकाशित करने की शक्ति न थी। 'शृंगारशतक' के एक श्लोक की भाषा-टीका देखिये।

"अगना जु है स्त्रीसु। प्रेम के अति आवेश करि। जु कार्य करना चाहति है ता कार्य विषै ब्रह्मा ऊ। प्रत्यूह आधातुं। अन्तराउ कीवे कहँ। कातर। काइस है। काइस कहा वै असमर्थ। जु कछु वो कर्यो चाहैं सु अवश्य करहिं। ताको अन्तराउ ब्रह्म पहँ न करयो जाइ और की कितीक बात।"

यह टीका है इस श्लोक की—

> उन्मत्तप्रेमसरम्भादालभन्ते यदङ्गना ।
> तत्र प्रत्यूहमाधातु ब्रह्मापि खलु कातर ॥

अब पाठक स्वयं बतावें कि इस टीका के आधार पर इस पद्य का कुछ अर्थ उनकी समझ में आया ?

रामचन्द्रिका का एक दोहा है—

> राघव शर लाघव गति छत्र मुकुट यों हयो।
> हंसबल अंसु सहित मानहु उडिकै गयो ॥

इसकी टीका देखिए—

"सबल कहैं अनेक रंग मिश्रित हैं, अंसु कहैं किरण जाके ऐसे जे सूर्य हैं तिन सहित मानों कलिंद गिरि शृंगतें हंस कहे हंस

समूह उड़ गयो है। यहां जाति विषै एक वचन है इमन के सदृश श्वेत छत्र है और सूर्यन के सदृश अनेक रङ्ग जटित मुकुट है।"

इस प्रकार की गद्यभाषा टीकाओं मे मिलती है।

खड़ी बोली का वास्तविक आरंभकाल सम्वत् १८६० के लगभग है। उस गद्य को आरंभ करने वाले ये चार सज्जन थे—मुंशी सदासुख लाल, लल्लूलाल, इंशाअल्लाखाँ और सदल मिश्र।

मुंशी सदासुख लाल—इनका उपनाम नियाज था। ये दिल्ली के रहने वाले थे। इनका जन्म सं० १८०३ ई० हुआ था। पहले ये कंपनी के किसी दफ्तर में नौकर थे और १८५० के लगभग किसी अच्छे पद पर पहुँच गये थे। ये अच्छे कवि थे। उर्दू तथा फारसी में उन्होंने कई कवितागन्थ लिखे।

जब इनकी आयु ६५ वर्ष की थी तो इन्होंने नौकरी छोड़कर प्रयागवास किया और अपनी शेष आयु वहीं हरिभजन में लगाई। वहीं पर सम्वत् १८८१ में इनका देहान्त हो गया।

मुंशी जी उर्दू और फारसी के अच्छे लेखक थे। पर श्रीमद्भागवत का स्वतन्त्र हिन्दी-अनुवाद लिखकर इन्होंने हिन्दी की बड़ी सेवा की है। यदि वास्तव में देखा जाय तो हिन्दी के आदि गद्य लेखक ये ही हैं। लल्लूलाल और सदलमिश्र की तरह इन्होंने यह पुस्तक न किसी लोभ लालच से और न किसी अधिकारी की प्रेरणा से लिखी है। वे भगवद्भक्त थे और इस पुस्तक के निर्माण से इन्होंने अपनी भक्ति का परिचय दिया है।

इन्होंने सुखसागर में हिन्दुओं की उसी बोलचाल की शिष्ट भाषा का प्रयोग किया है जो उन दिनों सर्वत्र प्रचलित थी। जो रूप भाषा का उस समय कथावाचकों और संस्कृतपंडितों में प्रचलित था, मुंशी जी ने उसी को ही अपनाया। इस प्रकार की संस्कृत-मिश्रित हिन्दी का प्रयोग करने से उन्होंने भावी संस्कृत-साहित्य में प्रयोत्स्यमान भाषा का पूर्ण रूप दे दिया। उदाहरणार्थ उनकी भाषा का कुछ अंश नीचे दिया जाता है।

"इससे जाना गया कि संस्कार का भी प्रमाण नहीं, आरोपित उपाधि है। जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष में चांडाल से ब्राह्मण हुए और जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरत ही ब्राह्मण से चांडाल होता है। यद्यपि ऐसे विचार से हमें लोग नास्तिक कहेंगे, हमें इस बात का डर नहीं। जो बात सत्य होय उसे कहा चाहिए, कोई बुरा मान कि भला माने। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इस का (जो) सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप में लय हूजिए। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कहके लोगों को बहकाइए और फुसलाइए और सत्य छिपाइए व्यभिचार कीजिए और सुरापान कीजिए और धन-द्रव्य इक ठौर कीजिए और मनको कि तमोवृत्ति से भर रहा है, निर्मल न कीजिए। तोता है सो नारायण का नाम लेता है, परन्तु उसे ज्ञान तो नहीं है।"

"धन्य कहिए राजा दधीची को कि नारायण की आज्ञा अपने सीस पर चढ़ायी, अपने हाड़ ऐसे कामी कुटिल अहँकारी को

दे दिये कि उसने उन हाडों को वज्र बनाय कर वृत्रासुर से ज्ञानी से युद्ध किया और उसे मारा। जो महाराज की आज्ञा और दधीच के हाड वज्र न होता तो ग्यारह जन्म ताईं वृत्रासुर से युद्ध में सरवर और प्रबल न होता और जय पाता।"

इस प्रकार के उदाहरण एक दो स्थानों पर मिलते हैं पर श्री सदासुखलाल का सुखसागर उपलभ्य नहीं। इस लिए इन पंक्तियों से ही उनकी गद्यरचनाशैली का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। ('जो सुखसागर' नाम की पुस्तकें आजकल मिलती हैं, वे मु० सदासुखलाल की बनी नहीं हैं, अन्यान्य लेखकों की हैं।)

सैयद इंशाअल्ला खाँ—इनके पिता हकीम मीर माशा अल्लाखाँ नजाफी जफरी दिल्ली के रहने वाले थे। वे कवि थे और उनका कविता-उपनाम 'मसदर' था। इनके पूर्वज समरकंद निवासी थे और किसी कारण से समरकंद छोड़ काश्मीर में आ बसे थे। किन्तु माशाअल्ला खाँ नवाब जुल्फिकार खाँ के समय में काश्मीर छोड़ दिल्ली चले आये थे। कुछ समय के बाद वे दरबारी हकीम हो गये और वहीं स्थायी तौर पर रहने लगे।

कुछ समय बाद ये दिल्ली छोड़ मुर्शिदाबाद चले आये और वहीं पर इंशाअल्ला खाँ का जन्म हुआ। रईसपुत्र होने के कारण इनका पालन पोषण उसी ढंग से हुआ जैसे रईसों के पुत्रों का होता है। अपने चारों ओर शान और शौकत के सामान होने पर भी इनका चित्त कभी विद्याभ्यास से विमुख न होता था। ये बड़े

मेधावी युवक थे, अत थोड़े समय में ही इन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त कर ली। स्वभाव से ही ये अति चञ्चल और चुलबुली प्रकृति के थे। कविता की ओर इनकी अधिक प्रवृत्ति थी, इसलिए ये उसी की ओर झुके। फिर क्या था! थोड़े ही समय में ये अच्छे कवि बन गए।

जब बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला मारे गए और मुर्शिदाबाद में गड़बड़ मच गई तो ये मुर्शिदाबाद छोड़ कर दिल्ली चले आए। उस समय दिल्ली सम्राट्, शाह आलम द्वितीय के अधिकार मे थी। बादशाह स्वय भी कवि थे, इस लिए उन्हें इँशाअल्ला खाँ की कविता बहुत पसन्द आई। तब से ये बादशाह के दरबार में रह कर उनके कृपापात्र बने रहे।

दिल्ली में उस समय कई और नामी कवि भी थे। उन्हें इँशा-अल्ला खाँ का बादशाह का कृपापात्र होना बहुत बुरा मालूम हुआ। परिणाम स्वरूप व इनसे द्वेष करने लगे और इनकी कविताओं में दोष निकालने लगे।

सवत् १६४५ में गुलाम कादिर ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और शाह आलम को अंधा कर डाला। वहाँ की परिस्थिति बदलती देख कर इँशाअल्ला खाँ लखनऊ चले आए। वहाँ पर नवाब आसफुद्दौला के दान और गुणग्राहिकता की धूम मच रही थी। इन्होंने भी वहाँ आकर अपने भाग्य की परीक्षा करनी चाही। वहाँ पर इन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई और धीरे धीरे मिर्जा सलेमान शिकोह के कृपापात्र बन गए।

कुछ समय बाद इनका भाग्य और चमका। अपने एक मित्र की सहायता से नवाब सआदत अली खाँ से इनका परिचय हो गया। थोड़े ही समय में नवाब उन पर मुग्ध हो गए और व सदा नवाब के साथ रहने लगे।

सयद ईंशाअल्ला हँसोड़ भी बड़े थे। इनका रंग गोरा और शरीर मोटा था। किसी पर्व के दिन एक काश्मीरी ब्राह्मण का स्वाँग बना कर घाट पर आ बैठे और लोगों से दान लेने लगे।

सभी दिन एक से नहीं रहते। सयद साहिब और नवाब म किसी बात पर वैमनस्य हो गया। परिणाम यह हुआ कि नवाब ने इनका वेतन बन्द कर दिया। उन्हीं दिनों इनके एक पुत्र की भी मृत्यु हुई थी। इन दोनों विपत्तियों को सयद साहिब न सह सके और उनका दिमाग बिगड़ गया। धीरे धीरे सब ऐश्वर्य विलीन हो गया और रोटी के लिए भी पराधीन हो गए। अन्तिम दिनों में घर के एक कोने में नगे बदन घुटनों पर सिर रखे बैठे रहते थे। आगे राख का ढेर और टूटा हुआ हुक्का रखा रहता था। अन्त में ऐसा कष्टमय जीवन बिताते उनका स० १८७५ में देहान्त हो गया।

इनकी उर्दू कविताओं के अनेक सग्रह हैं। सयद ईंशाअल्ला खाँ उर्दू के विद्वान तो थे ही, हिन्दी भी उन्हे अच्छी आती थी। हिन्दी-गद्य के चार प्रारंभिक लेखकों में इनका भी स्थान है।

इन्होंने हिन्दी में 'उदैभान चरित्र या रानी केतकी की कहानी'

लिखी है। इस कहानी के विषय में वे स्वय लिखते हैं—"एक दिन बैठे बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी चाहिए कि जिसमे हिन्दी की छुट और किसी बोली की पुट न मिले तब जाके मेरा जी फूल की कली की तरह खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो। हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो।"

सभवत यह कहानी सवत १८५५ और १८६० के बीच लिखी गई है। उनके कहने के अनुसार इसकी हिन्दी ठठ है। इसमें न भाखापन (सस्कृत-मिश्रित हिन्दी को भाखा कहते थे) है और न किसी और बोली की पुट है।

आरभकाल के चारों लेखकों में इंशा की भाषा सब से चटकीली, मटकीली और मुहावरेदार और चलती है। इसका उदाहरण देखिये—

"इस बात पर पानी डाल दो नहीं तो पछताओगी और अपना किया पाओगी। मुझ से कुछ न हो सकेगा। तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती तो मेरे मुँह से जीते जी न निकलती, पर यह बात मेरे पेट में नहीं पच सकती। तुम अभी अल्हड़ हो, तुमने अभी कुछ देखा नहीं।"

इंशा ने कृदन्त क्रियाओं और विशेषणों के साथ भी बहुवचन-सूचक चिह्नों का प्रयोग किया है। जैसे-आतियाँ जातियाँ जो साँसें हैं, बहलातिया है, धूमे मचातिया, अँगड़ातिया जँमा-

तिया उगलातिया नचातिया और ढुली पड़तिया थीं। इस पुस्तक में रंडिया शब्द खिलवाड़ स्त्रियों के लिए आगया है। इसका अश्लील अर्थ नहीं।

लल्लूलाल--लल्लूलाल आगरे के रहने वाले एक गुजराती ब्राह्मण थे। इनका जन्म सवत् १८२० और मृत्यु सवत् १८८७ में हुई थी। ये सस्कृताभिज्ञ नहीं थे पर कविता अच्छी कर लेते थे। इनकी कविताओं के नमूने इनके रचे 'प्रेमसागर' में यत्र तत्र मिलते हैं। ये प० सदल मिश्र के साथ ही फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता में अध्यापनकार्य के लिए नियुक्त थे। वहीं पर अपने अध्यक्ष जान गिलक्राइस्ट के आदेश से इन्होंने भागवत के दशमस्कध का हिन्दी में अनुवाद किया। उस पुस्तक का नाम 'प्रेमसागर' रक्खा। इंशा के समान केवल ठेठ हिन्दी ही लिखने का प्रण तो इन्होंने नहीं किया था, पर अपनी पुस्तक में इन्होंने किसी विदेशी शब्द को भूलकर भी नहीं आने दिया।

मुंशी सदासुखलाल और इनकी भाषा में बहुत भेद है। मुंशी जी की भाषा साफ सुथरी खड़ी बोली है। पर लल्लूलाल जी की भाषा में व्रजभाषा की काफी पुट है। सन्मुख जाय, सिर नाय, कीजै, निरख, सोई-आदि अनेकों शब्द जो इन्होंने प्रयुक्त किए हैं, व्रजभाषा में प्रयुक्त होते हैं। इनका गद्य अकबर के समय के गग-कवि के गद्य से मिलता है, यद्यपि गग ने फारसी तथा अरबी

शब्दों का कहीं कहीं प्रयोग किया है, पर लल्लूलाल ने उनसे बचने का यत्न किया है। इनके वाक्य अनुप्रासान्त हैं।

उदाहरणार्थ नीचे के वाक्य देखिये—

लगे देवता जय जयकार कर फूल [बर्षाने,] विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर हरिगुण [गाने]। हरि की स्तुति कर विदा [किया] और मुचकुन्द को मोक्ष [दिया]। इस प्रसंग को जो [सुनावेगा] सो परमपद [पावेगा]।

इस प्रकार के वाक्यों की प्रेमसागर में भरमार है।

लल्लूलाल ने हिन्दी में ही गद्यपुस्तक नहीं लिखी, इन्होंने उर्दू में भी कई पुस्तकें लिखी हैं। इनकी सिंहासन बत्तीसी, बैताल पचीसी, शकुन्तला नाटक आदि कतिपय पुस्तकें उर्दू में हैं और राजनीति नाम का हितोपदेश की कहानियों का अनुवाद ब्रजभाषा में है।

इन्होंने अपना प्रेस—संस्कृतप्रेस कलकत्ते में खोला। जब ये सं० १८८१ में कालेज से पेंशन लेकर आगरा में आये तो अपना प्रेस भी साथ लेते आये। पर प्रेस को अधिक समय तक चला न सके, सं० १८८२ में इनका देहान्त हो गया।

पंडित सदल मिश्र—ये बिहारनिवासी और लल्लूलाल जी के समकालीन थे। जिस समय लल्लूलाल जी कलकत्ता कालेज में काम करते थे, उस समय ये भी वहीं अध्यापक थे। इन्होंने भी लल्लूलाल जी की तरह खड़ी बोली में गिलक्राइस्ट साहिब के कहने

से नासिकेतोपाख्यान का अनुवाद किया था। पर दोनों की भाषा में बहुत भेद है। लल्लूलाल के समान इनकी भाषा में व्रजभाषा के शब्दों की भरमार नहीं है। इन्होंने व्यवहारोपयोगी भाषा लिखने का प्रयास किया है और खड़ी बोली का व्यवहार भी यथाशक्ति किया है, पर इनकी भाषा साफसुथरी खड़ी बोली नहीं। इसमें कहीं कहीं पर व्रजभाषा के शब्द और स्थान स्थान पर पूरबी बोली के शब्द घुस आये हैं। यहँ दिस, सुनि-आदि शब्द व्रजभाषा के हैं और इहाँ, मतारी, जौन-आदि पूरबी भाषा के हैं।

हिन्दी गद्य की प्रतिष्ठा करने वाले इन चार सज्जनों में से आधुनिक हिन्दी गद्य का आभास मुन्शी सदासुखलाल और प० सदल मिश्र की भाषा में मिलता है। व्यवहारोपयोगी भाषा भी इन्हीं की है। सय्यद ईशाअल्लाखाँ तथा लल्लूलाल जी की भाषा का प्रयोग उनके सिवा न किसी ने आज तक किया है। न और आगे को करने की सम्भावना है। लल्लूलाल जी की भाषा कथा-वाचकों के लिए अत्युपयुक्त है। इसी कारण प्रेमसागर का प्रचार अब भी हो रहा है।

इन चारों में मुन्शी सदा सुखलाल ने गद्य लिखने के लिए अपनी कलम पहले उठाई थी, इसलिए उन्हीं को आधुनिक गद्य का प्रधान प्रतिष्ठापक मानना चाहिए।

संवत् १८६० के लगभग हिन्दी की प्रतिष्ठा तो हो गई थी, परन्तु इसका आगे का प्रसार बन्द सा हो गया। इसके लगभग

पचास वर्ष बाद राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह के समय में इसकी रुकी हुई गति फिर आगे को बढ़ी। बीच के पचास वर्ष हिन्दी के प्रचार की दृष्टि से बिलकुल शून्य ही समझने चाहिएँ। कारण यह था कि इसी समय में लार्ड मेकाले ने भारतीय शिक्षा की नई योजना तैयार की थी। इसमें अंग्रेजी को बहुत व्यापक स्थान दिया गया था। परिणाम यह हुआ कि भारतीय भाषाओं की उन्नति में रुकावट होने लगी।

मेकाले की नई योजना के अनुसार शिक्षणालयों में हिन्दी का स्थान न रहा, पर एक और प्रकार से इसकी कुछ उन्नति हुई।

अंग्रेजी शासन के साथ ही अंग्रेजों का धर्म (ईसाई धर्म) भी भारत में घुसने लगा। ईसाई लोग उसके प्रचार में व्यग्रता दिखाने लगे। उन्होंने अपने धर्म-ग्रन्थ बाइबल का अनुवाद हिन्दी में करवाया, क्योंकि बिना इसके काम न चल सकता था। उन दिनों सिरामपुर ईसाइयों का मुख्य अड्डा था। यहीं पर पादरी केरे ने स्वयं बाइबल का अनुवाद हिन्दी में किया। इसके अतिरिक्त कतिपय अन्य पुस्तकों का अनुवाद भी हिन्दी में हुआ। इनके अनुवाद की भाषा सदासुखलाल और लल्लूलाल की विशुद्ध हिन्दी थी, उसमें उर्दू या फारसी अरबी का सम्मिश्रण न था, नमूना देखिए—

"यीशु ने उसको उत्तर दिया कि अब ऐसा होने दे क्योंकि इसी रीति से सब धर्म को पूरा करना चाहिए। यीशु बपतिस्मा लेय तुरन्त जल के ऊपर आया और देखो उसके लिये स्वर्ग खुल

गया और उसने ईश्वर की आत्मा को कपोत की नाई उतरते और अपने ऊपर आते देखा।"

ईसाइयों को अपने धर्म के प्रचारार्थ शिक्षालय भी खोलने पड़े। उनमें पाठनार्थ कई पाठ्य पुस्तकें हिन्दी में तैयार कराईं। सारांश यह है कि जब हिन्दी की उन्नति सब ओर रुकी हुई थी इस समय ईसाई ही इस प्रकार इसका कुछ न कुछ प्रसार करते रहे।

अपने धर्म के प्रचार के लिए तो अंग्रेजों ने जनसाधारण की बोलचाल की भाषा हिन्दी का ही आश्रय लिया, परन्तु अदालती भाषा उर्दू ही रही। इसका परिणाम यह होने लगा कि लोगों की हिन्दी सीखने की प्रवृत्ति दिनों दिन घटने लगी। जो कुछ हिन्दी का थोड़ा बहुत प्रचार हो रहा था वह इन पादिरयों के कारण था, या तुलसी रामायण की चौपाइयों, या सूर के भजनों के कारण था। अन्यथा उर्दू का प्रचार बढ़ रहा था और हिंदी का कम हो रहा था।

सन् १८३० में उर्दू का पहला समाचारपत्र दिल्ली में प्रकाशित हुआ। इसके बाद १८०२ में राजा शिवप्रसाद ने 'बनारस अखबार' नाम का पत्र काशी से निकाला। इसकी भाषा तो प्रायः उर्दू ही थी, पर लिपि देवनागरी थी। इसके कुछ वर्ष पश्चात् १८०७ में बनारस ही से 'सुधाकर' नाम का एक और समाचारपत्र निकला। इसकी भाषा ठेठ हिन्दी थी, पर यह कुछ समय बाद ही बन्द हो गया।

इसके अनन्तर १८०६ में आगरे से एक और पत्र 'बुद्धिप्रकाश'

निकला जो कई वर्ष चलता रहा। इस पत्र की भाषा बहुत शुद्ध और सरल होती थी। उसमें से थोड़ा सा उद्धरण नीचे दिया है-

"स्त्रियों में सन्तोष और नम्रता और प्रीत यह सब गुण कर्ता ने उत्पन्न किये हैं केवल विद्या की न्यूनता है, जो यह भी हो तो स्त्रियाँ अपने सारे ऋण से चुक सकती हैं और लड़कों को लिखाना पढ़ाना जैसा उनसे बन सकता है वैसा दूसरे से नहीं।"

सन् १८११ में सर चार्लस उड ने शिक्षा के प्रचार के लिए एक आयोजन तैयार किया। उस समय उर्दू और हिन्दी का प्रश्न फिर उपस्थित हुआ। उर्दू को अदालतों में स्थान मिल चुका था, पर भारतीय साहित्य हिन्दी में था। अत न हिन्दी की वर्णमाला और न उसके साहित्य को छोड़ना सम्भव था। फलस्वरूप उसे भी शिक्षाविधान में स्थान देना पड़ा। अब एक और कठिनता उपस्थित हुई। हिन्दी का जितना भी प्रमुख साहित्य था वह सब पद्य में था, अत गद्य की भाषा के सम्बन्ध में कुछ खींचातानी होने लगी। इसी समय में राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह मैदान में निकले।

संवत् १९१३ में—विद्रोह के एक वर्ष पूर्व राजा शिवप्रसाद शिक्षाविभाग के इन्स्पेक्टर बने। उर्दू के पक्षपाती मुसलमानों के विरोध में उन्हें हिन्दी की रक्षा के लिए बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। विरोधियों का आग्रह था कि हिन्दी कठिन है। अत राजा साहिब को ऐसी हिन्दी भाषा का आश्रय लेना पडा जिसमें

शुद्ध फारसी और अरबी के चलते चलते शब्द आ जायें। यदि वे इस नीति का अवलम्बन न करते तो इन्हें अपने ध्येय में कदापि सफलता न मिलती। उनके सामने एक और बाधा उपस्थित थी। हिन्दी में पाठ्यपुस्तकें न थीं, जो थीं भी, वे सब ईसाइयों की साम्प्रदायिकता से भरी हुई थीं। इस लिए इस अभाव को दूर करने के लिए ये और उनके कुछ मित्र पाठ्यपुस्तकों की तैयारी में लग गये, और उन्हें तैयार कर दिया।

राजा शिवप्रसाद ने उस कठिन समय में हिन्दी की जो सेवा की है, उसके लिए हिन्दीभाषी जनता को उनका चिरऋणी रहना चाहिए। पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त राजा साहिब ने कुछ और पुस्तकें भी लिखी हैं। उनमें से कुछ ये हैं—इतिहासतिमिरनाशक, मानव धर्मसार। इस संग्रह में प्रकाशित 'राजा भोज का सपना' और 'रानी भवानी' उन्हीं की कृतियाँ हैं।

राजा शिवप्रसाद की खिचड़ी भाषा से उस समय काम भी निकल आया और विरोधियों का मुँह भी बंद हो गया, पर वास्तविक हिन्दी-प्रेमी इससे सन्तुष्ट न थे।

ऐसी परिस्थिति में हिन्दी का असली नमूना लेकर राजा लक्ष्मणसिंह साहित्य क्षेत्र में अवतीर्ण हुए।

उन्होंने सम्वत् १९१८ में प्रजाहितैषी नाम का पत्र आगरे से प्रकाशित किया और १९१९ में कालिदास की 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' का अनुवाद सरस और शुद्ध हिन्दी में जनता के सामने रखा।

'शकुन्तला' की बहुत प्रशंसा हुई। राजा साहिब खिचड़ी हिन्दी को हिन्दी ही न मानते थे। अपने अनुवादित 'रघुवंश' की भूमिका में उन्होंने भाषा के सम्बन्ध में अपने विचार यों प्रकट किये हैं—

"हमारे सम्बन्ध में हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी न्यारी हैं। हिन्दी इस देश के हिन्दू बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमान और फारसी पढ़े हुए हिन्दुओं की बोलचाल है। हिन्दी में संस्कृत के पद बहुत आते हैं, उर्दू में अरबी में फारसी के, परन्तु कुछ अवश्य नहीं है कि अरबी फारसी के शब्दों के बिना हिन्दी न बोली जाय और न हम इस भाषा को हिन्दी कहते हैं जिसमें अरबी फारसी के शब्द भरे हों।"

राजा लक्ष्मणसिंह कम्पनी के एक उच्च कर्मचारी थे। उन्हें अपना ही काम काज बहुत रहता था, तो भी वे कभी हिन्दी की सेवा से नहीं हिचकिचाये।

जिस प्रकार संयुक्त प्रान्त में राजा शिवप्रसाद शिक्षाविभाग में रहकर हिन्दी की सेवा कर रहे थे, उसी प्रकार पञ्जाब में एक बङ्गाली महाशय नवीनचन्द्र राय इसकी सेवा में लीन थे। इन्होंने भी संवत् १६७० और सं० १६३७ के बीच कितने ही विषयों पर हिन्दी की पुस्तकें तय्यार कीं और करवाईं। आपकी बनाई हुई पुस्तकें बहुत काल तक पञ्जाब की पाठ्यप्रणाली में नियत रही हैं। उन्होंने एक शिक्षाविषयक पत्रिका

'ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका' नाम से निकाली थी। इनका हिन्दी-गद्य शुद्ध था। उर्दू फारसी के झमेलों में इन्होंने हिन्दी को नहीं आने दिया।

नवीन बाबू की 'विधवाविवाह व्यवस्था' नामक पुस्तक में एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

'विधवाविवाह शास्त्रसम्मत अथवा शास्त्र विरुद्ध कर्म है। इस विषय की मीमांसा में प्रवृत्त होना हो तो पहिले यह निरूपण करना आवश्यक है कि वह शास्त्र कौनसा है जिसके सम्मत होने से विधवाविवाह कर्त्तव्य समझा जाय और जिसके विरुद्ध होने से अकर्त्तव्य समझा जाय। व्याकरण काव्य अलङ्कार दर्शन-प्रभृति शास्त्र इस विषय के शास्त्र नहीं हैं।"

नवीनचन्द्र जी के समय में ही पञ्जाब में पण्डित गुरुदयालु शास्त्री हुए हैं। ये लाहौर के ओरियेंटल कालेज में अध्यापक थे। इन्होंने 'न्यायबोधनी' नाम की एक पुस्तक लिखी थी। उसमें से कुछ अंश नीचे उद्धृत है—

'यद्यपि मनुष्य जगत के पदार्थों का प्रत्यक्ष में ही निश्चय कर सकता है तो भी बहुत पदार्थ परमाणु आदि ऐसे हैं जो युक्तिसिद्ध हैं मानने तो अवश्य पड़ते हैं, परन्तु प्रत्यक्ष उनका नहीं होता और जानना सम्पूर्ण पदार्थों का अभीष्ट है। इसलिये इन सब पदार्थों के मिले हुए और भिन्न भिन्न ऐसे एक धर्म जानना चाहिये कि जो धर्म जिस वस्तु का हो वह उस सारी वस्तु

में रहे कोई स्थान रीता न छोड़े और उस वस्तु से भिन्न वस्तु में कहीं न रहे ऐसे धर्म का नाम लक्षण है। जिसका लक्षण करना अभीष्ट है उसे लक्ष्य कहते हैं।

यह वह समय था जब ईसाईमत का प्रचार ज़ोरों पर था। उसकी आती हुई बाढ़ को रोकने की आवश्यकता थी। समय ने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण किया। सन् १८१० से उन्होंने नगर नगर घूम कर वैदिक मत का प्रचार और आर्यसमाजों का संस्थापन किया। स्वामी जी की मातृभाषा गुजराती थी, पर वे हिन्दी के कट्टर पक्षपाती थे। इसी भाषा को ये सार्वदेशीय भाषा बनाने के पक्ष में थे। उनकी प्रतिभा का चमत्कार इसी से ज्ञात होता है कि गुजराती भाषा-भाषी होने पर भी उन्होंने अपने सब ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखे हैं। इनका रचा हुआ 'सत्यार्थप्रकाश' अब तक लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुका है। आपकी हिन्दी भी शुद्ध है, पर कहीं कहीं उस पर गुजराती का प्रभाव झलकता है।

स्वामी जी का पंजाब में बहुत प्रभाव पड़ा। उर्दू के गढ़ पंजाब में उनके हिन्दी प्रचार को आशातीत सफलता मिली है। आर्यसमाजी स्कूलों के द्वारा हिन्दी का खूब प्रचार हो रहा है। आर्य-समाज के प्रभाव को रोकने के लिए सनातन धर्म सभाओं की प्रतिष्ठा हुई। उन्होंने भी आर्यसमाज की कार्यप्रणाली

का ही अवलम्बन किया। अब उनके द्वारा भी हिन्दी की अच्छी उन्नति हो रही है।

आर्यसमाज के आन्दोलन के समय में संवत् १६२० में एक विलक्षण प्रतिभाशाली विद्वान पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी के व्याख्यानों की पंजाब में बड़ी धूम थी। ये ईसाईमत के विरोधी थे और अपने व्याख्यानों के द्वारा उसके प्रभाव को कम कर रहे थे। इनकी महाभारत और रामायण की कथाएँ अत्यन्त रोचक होती थीं। सहस्रों मनुष्य इन्हें सुनने को एकत्रित होते थे। इनकी भाषा बड़ी ज़ोरदार होती थी। इन्होंने अपने सिद्धान्तों का एक ग्रन्थ 'सत्यामृतप्रवाह' नाम का लिखा है। इनकी प्रकृति बहुत स्वतन्त्र थी। ये स्वामी जी के कई सिद्धान्तों के विरोधी थे और कई के सम्मत। इन्होंने पीछे 'आत्म चिकित्सा' 'तत्त्वदीपक' 'धर्म रक्षा', 'उपदेश संग्रह' आदि कई धर्मपुस्तकें लिखी हैं। इन्होंने एक अपना जीवनचरित्र भी लिखा था जो अब उपलब्ध नहीं। इनकी मृत्यु सं० १६३८ में हुई। जनता इनको हिन्दी लिखने में हरिश्चन्द्र के समकक्ष मानती थी।

राजा लक्ष्मणसिंह के समय में हिन्दीगद्य अपने भावी रूप का आभास दे चुका था। अब आवश्यकता थी ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न शक्तिशाली लेखकों की जो उसे सुव्यवस्थित और परिमार्जित कर सत्साहित्योपयोगी बनावें। ठीक ऐसी परिस्थिति में हरिश्चन्द्रजी का साहित्य क्षेत्र में उदय हुआ।

हरिश्चन्द्र जी की जीवनी के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहना है कि बचपन से ही इनमें एक भावुक और प्रतिभाशाली लेखक होने के लक्षण दीखने लग गये थे। जो भाग इन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य को एक सुन्दर सरणी में चलाने में लिया है वह अनुपम है। इन्होंने जिस प्रकार गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत चलता, मधुर और स्वच्छ रूप दिया उसी प्रकार हिन्दी साहित्य को भी नवीन मार्ग पर ला दिया। उनकी चलाई भाषा-परिपाटी को सबने अपनाया है, इसलिए व वर्तमान हिन्दी गद्य के अद्वितीय प्रवर्तक माने गये हैं। 'मुंशी सदासुखलाल की भाषा साफ होते हुए भी पण्डिताऊपन लिए थी, लल्लूलाल में ब्रजभाषापन और सदल मिश्र में पूरबीपन था, राजा शिवप्रसाद का उर्दूपन शब्दों तक ही परिमित न था, वाक्य विन्यास तक घुसा था। राजा लक्ष्मणसिंह की भाषा विशुद्ध और मधुर तो अवश्य थी, आगरे की बोलचाल की पुट उसमें कम न थी। पर भाषा का निखरा हुआ शिष्ट सामान्य रूप भारतेन्दु जी कला के साथ ही प्रकट हुआ। भारतेन्दु ने पद्य की ब्रजभाषा का भी बहुत कुछ संस्कार किया। पुराने पड़े हुए शब्दों को हटाकर काव्य-भाषा में भी वे बहुत कुछ चलतापन और सफाई लाए।

सबसे बड़ा काम उन्होंने यह किया कि साहित्य के मुख को ...से हटा कर नये मार्ग की ओर किया। जनता और

साहित्य में समता स्थापित की। नई शिक्षा के लोगों की विचार-धारा बदल दी। उनमें नई आशाएँ और नई उमंगें उठ चुकी थीं। भारतेन्दु ने उनकी आशाओं के अनुकूल साहित्य का निर्माण किया। बँगला का साहित्य बहुत उन्नति कर रहा था, उसमें अच्छे अच्छे नाटक और उपन्यासों का आविर्भाव हो रहा था, पर हिन्दी में वही अनन्त काल से चली आती भक्ति और शृंगार की धारा बह रही थी। भारतेन्दु ने उसको मोड़ कर हमारे जीवन की अनुगामिनी कर दिया। इस प्रकार हमारे जीवन और साहित्य में जो विच्छेद पड़ा था, उसे उन्होंने दूर किया। इस कारण हिन्दी भाषा और साहित्य के एक मात्र उद्धारक भारतेन्दु ही थे।

संवत् १६२२ में वे सपरिवार जगन्नाथ यात्रा को गये। उसी यात्रा में उन्हें बँगला साहित्य का परिचय हुआ। बँगला साहित्य उन दिनों नित्य नये उपन्यास, नाटक, इतिहास ग्रन्थों से भरा जा रहा था। भारतेन्दु को उसके सम्मुख में हिन्दी की दशा बहुत हीन जँची। यात्रा से लौटते ही वे इस अभाव को दूर करने की ओर अग्रसर हुए। सं० १६२५ में उन्होंने 'विद्यासुन्दर' नाटक का बँगला से अनुवाद किया। उसी वर्ष 'कविवचनसुधा' नाम की एक हिन्दीपत्रिका भी निकाली, जिसमें उत्तमोत्तम कविताएँ और गद्य-लेख निकलने लगे। संवत् १६३० में उनकी 'हरिश्चन्द्र-मेगज़ीन' निकली, पीछे इसका नामकरण संस्कार 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' नाम से हुआ। इस चन्द्रिका में भारतेन्दु स्वयं तो लिखने

ही थे, पर कई एक अन्य लेखक भी इनमे उत्साहित होकर अपने अपने लेख उसमे प्रकाशित कराने लगे।

सम्वत् १९३० में उन्होंने 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नाम का मौलिक नाटक लिखा और सम्वत् १९३१ में 'बालाबोधिनी' पत्रिका निकाली।

'वैदिकी हिंसा' के बाद उनके 'कर्पूरमंजरी', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'चन्द्रावली नाटिका', 'मुद्राराक्षस, 'भारत दुर्दशा' 'अंधेर नगरी', 'नील-देवी' आदि बहुत से नाटक निकले।

इन नाटकों के अतिरिक्त उन्होंने 'काश्मीर-कुसुम' और 'बादशाह-दर्पण' नामक दो इतिहास-ग्रन्थ भी रचे।

इनका देहान्त सं० १९४१ में हुआ। पैंतीस वर्ष की इतनी छोटी आयु और अठारह वर्ष के साहित्यिक जीवन में हरिश्चन्द्र ने हिन्दी की इतनी सेवा की है जो दूसरों से सैकड़ों वर्षों में भी सम्भव नहीं।

हरिश्चन्द्र ने अपने जीवन काल में ही अपने प्रभाव से अपने चारों ओर हिन्दी-कवियों और लेखकों की एक खासी मण्डली तैयार कर ली थी। साथ ही हिन्दी के कतिपय पत्र भी निकलने लग गये थे। इनमें बिहार-बन्धु, भारत-बन्धु, हिंदी-प्रदीप, आनन्द-कादम्बिनी, पीयूष-प्रवाह, भारत-जीवन उल्लेखनीय हैं। इन लेखकों में से बहुतों का सम्बन्ध किसी न किसी पत्रिका से था। उनमें कुछ तो हिंदी के अच्छे लेखक माने जाते हैं। पण्डित बदरीनारायण

चौधरी, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, बाबू तोताराम, ठाकुर जगमोहन सिंह, श्री निवासदास, बालकृष्ण भट्ट, केशवराम भट्ट, राधाचरण गोस्वामी—ये सब भारतेन्दु के समकालीन थे। अपने अपने साहित्यिक क्षेत्र में इन्होंने हिन्दी की अच्छी सेवा की है।

इस लेख का उद्देश्य केवल हिन्दी के प्राचीन गद्य का इतिहास देना है। प्राचीन लेखकों की श्रेणी स्वामी दयानन्द सरस्वती तक ही समाप्त हो जाती है। उनके बाद हरिश्चन्द्र जी का उदय होता है। हरिश्चन्द्र जी नवीन शैली के प्रवर्तक और संस्थापक और प्राचीन गद्य और नवीन गद्य में सम्बन्ध स्थापित करने वाले हैं। इनके समय में हिंदी की अच्छी उन्नति हुई।

इसके बाद एक और समय आया। उस समय हिन्दी की प्रतिष्ठा हो चुकी थी, उसके अच्छे लिखने वाले भी थे, पर अंगरेजी पढ़े लिखे विद्वानों का झुकाव अभी उधर न हुआ था। फिर कुछ मित्रों के कहने सुनने से और कुछ अपनी लगन से व लोग हिंदी की ओर झुके और उसका साहित्य बढ़ाने लगे। पर उनकी भाषा त्रुटि पूर्ण थी। व लोग अंग्रेजी और बंगला के शब्दों के आगे विभक्ति चिन्ह लगा कर वाक्य बना देना ही हिंदी लिखना समझते थे। उनकी हिंदी व्याकरण-नियमों से कोसों दूर थी। ऐसी परिस्थिति देख कर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' में लेख लिख-लिख कर उन लेखकों का ध्यान उधर आकर्षित किया। परिणाम यह हुआ कि हिंदी का रूप बहुत कुछ सुधर गया।

इसके उपरान्त हिन्दी की ओर लोगों की रुचि बढ़ने लगी। नाटकों, उपन्यासों, गल्पों, और हिन्दी में दूसरे विषयों की पुस्तकों को पढ़ने के लिए लोग उत्सुक थे।

प्रकृति का नियम है कि जब किसी वस्तु की माँग होती है तो उसे पूरा करने के साधन भी निकल आते हैं। समय ने श्री-जयशंकर प्रसाद से नाटककार, स्वर्गीय प्रेमचन्द जी से उपन्यास-कार, प्रेमचन्द, सुदर्शन और कौशिक जैसे गल्पकार, आचार्य द्विवेदी जैसे समालोचक और दूसरे अपने अपने विषय के धुरंधर पण्डित—कई लेखकों को जन्म दिया। उनकी कृपा से हिन्दी-साहित्य-भण्डार दिनो दिन भरा जा रहा है। इस समय हमें हिन्दी का भविष्य समुज्ज्वल दीखता है। आशा है कि जिस तरह आज यह भारत की समस्त भाषाओं में मुख्य और सार्वजनिक भाषा का पद प्राप्त करने के योग्य समझी जा रही है उसी तरह समय आने वाला है जब यह समग्र भूमण्डल की भाषाओं में उच्च पद पाकर अपना और इस वृद्ध भारत का मुख उज्ज्वल करेगी। किन्तु तब और केवल तब, जब इसके सुपुत्र इसकी सेवा में तन-मन से निरत रहेंगे।

एक दो और शब्द

प्रस्तुत पुस्तक मे यह दिखाने का यत्न किया गया है कि गोरख-नाथ जी के समय से लेकर भारतेन्दु के उदय तक हिन्दी की गद्य-

शैली मे किस प्रकार विकास होता चला आया है। इस पुस्तक की भूमिका में प्राचीनकाल के लेखको की शैली के नमूने यत्र तत्र दिये गये हैं। यह भी सिद्ध किया गया है कि हिंदी-गद्य के वास्तविक प्रचारक लेखक-चतुष्टय—सदासुखलाल, ईशाअल्ला, लल्लूलाल और सदल मिश्र है। पर इनसे पहले भी गद्य रचना होती रही। इसलिए हमने सम्भवत सोलहवीं विक्रम शताब्दी के मध्य में लिखी हुई गोस्वामी गोकुलदास की 'दोसौ बावन वैष्णवो की वार्ता' से मतामीवें वैष्णव की वार्ता उद्धृत की है। इससे प्राचीनतम हिन्दी गद्य का विशेष परिचय हो सकेगा। इसके पश्चात् हम सदासुखलाल जी के 'सुखसागर' से काफी उद्धरण पुस्तक के कलेवर मे देना चाहते थे, पर सुखसागर की अनुपलब्धि के कारण उनके छोटे से दो उद्धरणों को भूमिका मे ही देकर सन्तोष करना पडा। लल्लूलाल जी के 'प्रेमसागर' से, ईशाअल्ला की 'रानी केतकी की कहानी' से और सदल मिश्र के 'नासिकेतोपाख्यान' से काफी अश लिये हैं। पुन स्वामी दयानन्द तक सब लेखको के गद्य के नमूने पर्याप्त म्यात्रा में दे दिये हैं।

सम्पादक

प्राचीन गद्य

गोसाईं गोकुलनाथ

गोसाईंजी श्री वल्लभाचार्य के पौत्र थे। इनके पिता का नाम गोसाईं विट्ठलदास था। वल्लभाचार्य जी सगुणोपासना की कृष्ण-भक्ति शाखा के सम्प्रदाय के आचार्य थे। उनके पुत्र और पौत्र उसी सम्प्रदाय के अनुगामी थे। गोसाईं गोकुलनाथ जी ने उसी सम्प्रदाय की महिमा को बढ़ाने वाली कथाओं का वर्णन 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' और चौरासी वैष्णवों की वार्ता' इन दो पुस्तकों में किया है। इनकी भाषा साहित्यिक नहीं, बोलचाल की है। उसमें अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग भी यत्र-तत्र मिलता है इन वार्ताओं का रचनाकाल सम्वत् १६२५ और १६५० के बीच माना जा सकता है।

सत्तासीवें वैष्णव की वार्ता

श्री गोसाईं जी के सेवक एक ब्रजवासी की वार्ता सो वे ब्रजवासी श्रीनाथजीकु परे कहेतो। सो ब्रजवासी गायन की खिरक में सेवा करतो हतो और एक सीधो भण्डार मेंसु ले जातो हतो और आठ पेहेरे गायन की सेवा मन लगायके बहुत आछी करतो हतो। एक दिन कोई वैष्णवकु श्री गुसाईं जी श्रीठाकुरजी पधराय देते हत सो वा ब्रजवासीने देख्यो फेर एक दिन श्री गुसाईंजीसु वा ब्रजवासीनें बीनती करी जो मोकु श्रीठाकुरजी पधराय देवो। वाही समय श्री गुसाईं जी न्हायके पधारते हते। जब आगे एक पत्थर पड्यो हतो। वा पत्थरकु श्री गुसाइं जी के खडाउ की ठोकर लगी सो दूर जाय पड्यो और वहा वे ब्रजवासी ठाडो हतो। श्रीगुसाईं जी नें कही परेपरे ऐंसे कहके श्रीगुसाईं जी भीतर पधारे। जब वो पत्थर ब्रजवासीन उठाय लियो फेर वा ब्रजवासी नें मनमें ऐंसो समझो य मोकु श्रीगुसाईजीनें श्रीठाकुरजी पधराय दीये और परेपरे श्रीठाकुरजी को नाम कहि दीयो है। ऐंसो भोरो हतो सो वे पत्थरकु ठाकुरजी मानके पधराय ले गयो फेर मनमें समझ्यो जो सीधोतो एक आवें सो परे कहा खावेगो। और में कहा खाउ गो ऐंसे समझके भण्डारीसु कही अब हमकु दो सीधा दयो। भण्डारी नें दो सीधा दिये सो फेर जायके रसोई करी और ब्रजवासी भोरो बहुत हतो। जब वानें दो पात करदीनी फेर कही आव भाई परे

एक पातर तरी ओर एक पातर मरी जब श्रीठाकुरजी आये नहीं —
तब वो ब्रजवासी कहनलग्यो जो भाइ ▮ आयके अपनी पातर
सभार ले। जो नरोतर है य फर-फार है जो तु नहीं आवेंगो तो
मैं दोनों पातर तलाव म डार दउगो तब श्रीठाकुर जी
वाको शुद्धभाव जानके और भोरो जानके पधारे ओर
साक्षात्स्वरूप धर क जीमन लग। ऐसे नित्य कृपा करक
पधारत। एक दिन श्री गुसाइजी न पूछी जो तु दो सीधा कहा
करेहे। जब वाने कही जो आपन वो मरे पतराय दीयो हे सो
एक पातर त खाय है ओर एक पातर में खाउ हु ये बात सुनर
श्री गुसाईजी मुस्काय क चुप कर रहे फर एक दिन भण्डारी न
वा ब्रजवासी सु कही जो तुम सूरत गाँम म जाय क भेट ले आवो।
जब ब्रजवासी नें कही सूरत गाम कहा होव है। भण्डारी नें कही
सूरत गाम सहेर है जब वा ब्रजवासी न कही भेटपत्र ओर प्रसा"
की थली दवो तो मैं सूरत जाउ। जब उहासु प्रसाद ओर पत्र
लेक ओर रसाइ करक सूरत की तैयारी करी ओर कही जो
भैया परे मैं तो सूरत जाउगो ओर ▮ आसगो क नहीं आवेंगो।
जब श्री ठाकुरजी नें कही जो मैं आवुगो जब वानें कही जो तरे
छोट छोट पाँव हैं। और छोट छोट हाथ हैं तु कैसे चल सकेगो।
जब श्री ठाकुरजी नें कही मैं थोड़ो थोड़ो चलुगो। ओर थोडीवार
तेरे काधे पर बैठुगो। ये बात कहिके श्री ठाकुरजी ब्रजवासी क
साथ चले वे उहा ते ब्रजवासी चाले जब दो तीन कोस आये तब
श्री ठाकुरजी नें कही मैं थक गयो हु। जब वा ब्रजवासी के काधा

पर बैठे जब थोरी दूर चले तब साझ भई तब श्री ठाकुरजी नें
ही जो आज उहा मोय रहो फेर काल सुबे चलेंगे फेर
हा मोय रहे फेर सवारे उठे सो ऐसे ठिकाणे उठे
ाहासु सूरत दोय कोश रही हती । तब उहातें चले पर सूरत
ग्राये उहा गाम बाहेर डेरा कीये और उहा श्री ठाकुरजीकु
ठाय व वो ब्रजवासी पत्र और प्रसाद ले गयो । गाम में वैष्णवन-
दृ पूछ के दियो । वे पत्र वाच के वैष्णवन नें विचार कियो जो
एक दिन में पत्र कैसे आयो होयगो । जब ये विचार कियो यामें
मेर कुछ अचरज होयगो । तब वैष्णवन नें वाकु सामग्री दिवाई
और एक दिन में सब ठिकाने फिरके पाच हजार रुपैया एकट्ठे
करके और हुडी करायके तब ब्रजवासी कु दीनी । सो ब्रजवासी
लेके और परेकु सब लेके उहातें चले । फेर रस्ता में आयके
मोय रहे फेर सवारे उठके वेहेर दिन चढ्यो गोपालपुर में आये
फेर भंडारी के पास गयो और दो सीधा मागे । जब भण्डारी ने
कही सूरत क्यु गयो नहीं जब वानें कही सूरत जाय आयोहु पत्र
और वस्त्र लायोहु । सो भण्डारीकु दीये । जब भण्डारी नें
पाच हजार की हुडी और वस्त्र और वैष्णवन के कागद देखके
चकित होय गयो । जो एक रात में कैसे गयो होयगो और कैसे
आयो होयगो सो य बात की बीनती श्री गुसाईजी के आगें करी
श्री गुसाईजी सुनके ऐसी आज्ञा करी जो ए सब श्रीनाथ जी के
काम हैं आज पीछे या ब्रजवासीकु कछु काम मत बताईयो और

जन्म सूधी सेर सीधा याकु नित्य दीजियो और नित्य या ब्रजवासी-कु बुलाय के श्री गुसाईजी के की वार्ता पूछ्यो करते आप कहे ते ये कही आप कहे ते ये कहे ऐसे नित्य किया करे सो ये ब्रजवासी भोलो हतो जन्मसु श्री ठाकुरजीकु करे समझो करे ऐसो कृपापात्र हतो। वार्ता सम्पूर्ण ॥ वैष्णव ॥८७॥

(श्री गोकुलनाथ जी की "दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता" में से)

लल्लूलाल

(संवत् १८२०—१८८२)

लल्लूलाल जी गुजराती ब्राह्मण थे। इनका निवासस्थान आगरा था। उर्दू और हिन्दी के ये अच्छे पण्डित थे। पर संस्कृत का इन्हें विशेष ज्ञान था। ये भी पण्डित सदल मिश्र के साथ फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता मे जान गिलक्राइस्ट की अध्यक्षता में काम करते थ, उन्हीं की उत्तेजना से इन्होंने भागवत के दशम स्कन्ध का हिन्दी-अनुवाद 'प्रेमसागर' नाम से रचा।

यद्यपि इन्होंने 'प्रेमसागर' खडी बोली में लिखा है तो भी उसपर ब्रजभाषा का काफी रङ्ग चढा हुआ है। इनकी भाषा का बोलचाल मे प्रयोग नहीं किया जा सकता और नाहीं प्रचलित साहित्यिक भाषा को भी इससे कुछ सहायता मिल सकती है। इनकी भाषा मे अनुप्रास अलंकार का प्रयोग बडी प्रचुरता मे मिलता है। प्रेमसागर की भाषा को हम 'काव्यभास' गद्य ही कह सकते हैं जो भक्तजनो की कथावार्ता में अधिक काम आ सकती है। यही कारण है कि इस समय भी प्रेमसागर का प्रचार बहुत अधिक है।

प्रेमसागर लिखने से पूर्व इन्होंने सिंहासन बत्तीसी, बैताल पचीसी, शकुन्तला नाटक, माधोनल—इन चार पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद किया है। इनके अतिरिक्त इन्होंने हिन्दी 'हितोपदेश' का ब्रजभाषा गद्य में अनुवाद 'राजनीति' नाम से किया है।

सन् १८८१ म कालेज से पेन्शन लेकर ये आगरा आ गये थ और वहा से अपना 'स स्कृतप्रेस' भी साथ लेते आये । पर उसे ज्यादा दिन तक चला न सके क्योंकि उसके एक साल बाद ही सन १८८१ में इनका देहान्त कलकत्ता में हो गया ।

प्रेमसागर

अथ कथा—प्रारम्भः

पीठानन्ध

महाभारत के अन्त में जब श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान हुए तब पाण्डव तो महादुःखी हो, हस्तिनापुर का राज्य परीक्षित को दे हिमालय गलने गये। और राजा परीक्षित मन दश जीत धर्मराज करने लगे, कितने एक दिन पीछे राजा परीक्षित आखेट को गये तो वहाँ देखा कि एक गाय और बैल दौड़े चले आते हैं, तिनके पीछे मूसल हाथ में लिए एक शूद्र मारता आता है। जब वे पास पहुँचे तब राजा ने शूद्र को बुलाय दुःख पाय झुँझलाय कर कहा अरे तू कौन है? अपना बखान कर जो मारता है गाय और बैल को जान कर, क्या तैंने अर्जुन को दूर गया जाना तिससे उसका धर्म्म नहीं पहिचाना। सुन, पाण्डु ... ऐसा किसी को न पावेगा कि जिसके सोहीं कोई ... देगा। इतना कह

कर राजा ने खड्ग हाथ में लिया। वह देख कर खड़ा हुआ फिर नरपति ने गाय और बैल को भी निकट बुलाय कर पूँछा तुम कौन हो मुझ से कहो देवता हो कि ब्राह्मण और किस लिये भागे जाते हो सो निधड़क कहो मेरे रहते किसी की इतनी सामर्थ्य नहीं जो तुम्हें दुःख दे।

इतनी बात सुनी तब तो बैल शिर झुका कर बोला—महाराज ये पापरूप, काले बर्ण, डरावनी सूरत जो आपके सन्मुख खड़ा है सो कलियुग है, इसी के भय से मैं भागा जाता हूँ। यह गाय रूप पृथ्वी है, सो भी इसी के डर से भाग चली और मेरा नाम धर्म है, चार पाँव रखता हूँ—तप, सत्य, दया और शौच, सतयुग में मेरे चरण बीस बिस्व थे, त्रेता में सोलह, द्वापर में बारह, अब कलियुग में चार बिस्व रहा, इसमें कलि के बीच चल नहीं सकता। धरती बोली—धर्मावतार! मुझ से इस युग में रहा नहीं जाता, क्योंकि शूद्र राजा हो अधिक अधर्म मेरे ऊपर करेंगे तिनका बोझ मैं न सह सकूँगी। इस भय से मैं भी भागती हूँ। यह सुनते ही राजा ने क्रोध कर कलियुग से कहा—मैं तुझे अभी मारता हूँ, वह थरथरा राजा के चरणों पर गिर गिड़गिड़ा कर कहने लगा कि, पृथ्वीनाथ! अब तो मैं तुम्हारी शरण आया मुझे कहीं रहने को ठौर बताइये, क्योंकि तीन काल और चारों युग ब्रह्मा ने बनाये हैं सो किसी भांति मेटे नहीं मिटेंगे! इतना वचन सुनते ही राजा परीक्षित ने कलियुग से कहा कि तुम इतनी ठौर रहो—जुयें, झूँठ, मद की हाट, वेश्या के हत्या, चोरी और सुवर्ण में, यह सुन कलि ने तो अपने

स्थान को प्रस्थान किया और राजा ने धर्म्म को अपने मन मे रख लिया, पृथ्वी अपने स्वरूप मे मिल गई। राजा फिर नगर मे आये और धर्मराज करने लगे। कितने एक दिन बीते राजा फिर एक समय आखेट को गये और खेलते खेलते प्यासे भये, शिर के मुकुट म तो कलियुग रहता ही था उसने अपना अवसर पा राजा को अज्ञान किया, राजा प्यास के मारे वहाँ आते हैं कि जहाँ लोमश ऋषि आसन मारे नयन मूँदे हरि का ध्यान लगाये तप कर रहे थे, उन्हें देख राजा परीक्षित मन में कहने लगे कि इन्होंने अपने तप के घमण्ड से मुझे देख आँखें मूँद ली हैं, ऐसे कुमति ठान एक मरा साँप वहाँ पडा था सो धनुष से उठा ऋषि के गले मे डाल अपने घर आया। मुकुट उतारते ही राजा को ज्ञान हुआ तो सोच कर कहने लगा कि कञ्चन में कलियुग का वास है यह मेरे शीश पर था इससे मेरी ऐसी कुमति हुई जो मरा सर्प ले ऋषि के गले मे डाल दिया सो मैं अब समझा कि कलि ने मुझसे पलटा लिया, इस महापाप से कैसे छूटूँगा। वरन् धन, जन, स्त्री और राज मेरा क्यों न गया सब आज, न जानूँ किस जन्म में यह अधर्म्म जायगा जो मैंने ब्राह्मण को सताया है। राजा परीक्षित तो यहाँ इस अथाह शोक-सागर में डूब रहे थे और जहाँ लोमश ऋषि थे तहाँ कितने एक लडके खेलते हुए जा निकले, मरा साँप उनके गले में देख अचम्भे म रहे और घबरा कर आपस में कहने लगे कि भाई कोई इसके पुत्र से जाकर कहदे, जो उपवन में कौशिकी नदी के तीर लड़कों में खेलता है, एक सुनते ही दौड़ा वहाँ

शृङ्गी ऋषि छोकरों के साथ खेलता था। कहा बन्धु तुम यहाँ क्या खेलते हो, कोई दुष्ट मरा साँप तुम्हारे पिता के कण्ठ में डाल गया है। सुनते ही शृंगी ऋषि के नेत्र लाल हो आये, दाँत पीस-पीस लगा थर-थर काँपने और क्रोध कर कहने कि कलियुग में राजा उपजे हैं अभिमानी, धन के मद से अन्धे हो गये हैं दुखदायी, अब मैं उनको देऊँ शाप, वही मीच पावैगा आप। ऐसे कह शृंगी ऋषि ने कौशिकी नदी का जल चुल्लू में ले राजा परीक्षित को शाप दिया कि यही सर्प सातवें दिन तुमको डसेगा। इस भाँति राजा को शाप दे अपने बाप के पास आ गले से साँप निकाल कहने लगा कि हे पिता, तुम अपनी देह सँभालो, मैंने उसे शाप दिया है जिसने आपके गले में मरा सर्प डाला था। यह बात सुनते ही लोमश ऋषि ने चैतन्य हो नयन उघाड़ अपने ज्ञान, ध्यान से विचार के कहा—अरे पुत्र! तूने यह क्या किया? क्यों शाप राजा को दिया? उसके राज्य में हम सुखी थे और कोई पशु पक्षी भी दुखी न था। ऐसा धर्मराज था कि सिंह गाय एक साथ रहते और आपस में कुछ न कहते। हे पुत्र! जिनके देश में हम बसें थे क्या हुआ जिनके हाथ से मरा हुआ साँप डाला गया, उसे शाप क्यों दिया? तनक दोष पर ऐसा शाप तैंने दिया, बड़ा ही पाप किया, कुछ विचार मन में न किया। गुण छोड़ा औगुण लिया, साधु को चाहिए शील स्वभाव से रहे, आप कुछ न कहै और की सुन ले मन का गुण ले अवगुण तजै। इतना कह लोमश ऋषि ने एक चेले को बुला कर कहा तुम राजा परीक्षित को जाके

दो सो तुम्हें शृंगी ऋषि ने शाप दिया है भले लोग तो

दोष देहेंगे पर वह सुन सावधान तो हो जाय। इतना वचन गुरु का मान चेला चला वहाँ आया जहाँ राजा बैठा सोच करता था, आते ही कहा--महाराज! तुम्हें शृंगी ऋषि ने यह शाप दिया है कि सातवें दिन तक्षक डसेगा, अब तुम अपना कार्य्य करो जिससे कर्म्म की फाँसी से छूटो। राजा सुनते ही प्रसन्न हो हाथ जोड़ कहने लगा कि मुझ पर ऋषि ने बड़ी कृपा की जो शाप दिया--क्योंकि मैं माया मोह के अपार शोक-सागर में पड़ा था सो निकाल बाहर किया। जब मुनि का शिष्य विदा हुआ तब राजा ने आप वैराग लिया और जनमेजय को बुलाय राज पाट देकर कहा--बेटा गौ ब्राह्मण की रक्षा कीजो और प्रजा को सुख दीजो। इतना कह आये रनिवास, देखी रानी सभी उदास, राजा को देखते ही रानियाँ पाँवों पर गिर रो रो कहने लगीं--महाराज! तुम्हारा वियोग हम अबला न सह सकेंगी इससे तुम्हारे साथ जी दें तो भला। राजा बोला--सुनो स्त्री को उचित है कि जिससे अपने पति का धर्म्म रहे सो करे, उत्तम कार्य्य में बाधा न डाले। इतना कह धन जन कुटुम्ब और राज्य की माया तज निर्मोही हो अपना योग साधने को गंगा के तीर जा बैठा। इसको जिसने सुना वह हाय २ कर पछताय २ बिन रोये न रहा और जब ये समाचार मुनियों ने सुना कि राजा परीक्षित शृंगी ऋषि के शाप से मरने को गङ्गा के तीर आ बैठा है। तब व्यास, वशिष्ठ, भरद्वाज, कात्यायन, पराशर, नारद, विश्वामित्र, वामदेव, जमदग्नि, आदि अट्ठासी सहस्र ऋषि आये, और आसन बिछाय २ पाँत २

भाँति के धर्म सुनाने लगे कि इतने में राजा की श्रद्धा देख पोथी काँख में लिए दिगम्बर भेष श्री शुकदेव जी भी आ पहुँचे। उनको देखते ही जितने मुनि थे सब उठ खड़े हुए, और राजा परीक्षित भी हाथ बाँध खड़ा हो बिनती कर कहने लगा। हे कृपानिधान मुझ पर बड़ी दया की जो इस समय मेरी सुध लिया। इतनी बात कही तब शुकदेव मुनि भी बैठे तो राजा ऋषियों से कहने लगे कि महाराज शुकदेव स्वामी जी के तो बेटे और पराशर जी के पोते तिनको देख तुम बड़े बड़े मुनीश होके उठे सो तो उचित नहीं इसका कारण कहो जो मेरे मन का सन्देह जाय। तब पराशर मुनि बोले--हे राजा जितने हम बड़े २ ऋषि हैं पर ज्ञान में शुकदेव जी से छोटे हैं, इसलिये सब ने शुक का आदर मान किया, किसी ने इस आशा पर कि ये तारणतरण हैं क्योंकि जब से जन्म लिया है तबही से उदासी हो बनवास करते हैं और राजा तेरा भी बड़ा पुण्य उदय हुआ जो शुकदेवजी आये, ये सब धर्मों से उत्तम धर्म कहेंगे जिस से तू जन्म मरण से छूट भवसागर पार होगा। यह वचन सुन राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी को दण्डवत कर पूछा कि, महाराज! मुझे धर्म्म समझाय के कहो कि किस रीति से कर्म्म के फन्द से छूटूँगा, सात दिन में क्या करूँगा! अधर्म्म है अपार, कैसे भवसागर हूँगा पार।

श्रीशुकदेव जी बोले--राजा तू थोड़े दिन मत समझ, मुक्ति तो होती है एक ही घड़ी के ध्यान से, जैसे खट्वाङ्ग राजा को नारद मुनि ने ज्ञान बताया था और उसने दो ही घड़ी में मुक्ति पाई थी तुझे तो सात दिन बहुत हैं। जो एकचित होके ध्यान से मन

समझो अपने ही ज्ञान से, कि क्या है देह किसका है आप कौन करता है इसमें प्रकाश। यह सुन राजा ने दंडवत कर पूछा, महाराज! सब धर्मों से उत्तम धर्म कौनसा है सो कृपा कर कहो। तब शुकदेव जी बोले—हे राजा! जैसे सब धर्मों में वैष्णव धर्म बड़ा है वैसे पुराणों में श्रीमद्भागवत। जहाँ हरिभक्त यह कथा सुनाते हैं, तहाँ ही सर्व तीर्थ और धर्म आते हैं। जितने हैं पुराण पर नहीं हैं भागवत के समान, इस कारण मैं तुम्हें यह [illegible] महापुराण सुनाता हूँ जो व्यास मुनि ने मुझे पढ़ाया है तू श्रद्धा समेत आनन्द से चित्त दे सुन। तब तो राजा परीक्षित प्रेम से सुनने और शुकदेव जी मन से सुनाने लगे।

नवमस्कन्ध की कथा जब मुनि ने सुनाई तब राजा ने कहा—हे दीनदयाल अब दयाकर कृष्णावतार की कथा कहिये, क्योंकि हमारे सहायक और कुलपूज्य वही हैं। शुकदेव जी बोले—हे राजा! मैं उग्रसेन के भाई देवक की कथा कहता हूँ कि उसके चार बेटे और छः बेटियाँ थीं सो सब वसुदेव को ब्याह दीं, सातवीं देवकी हुई जिससे होने से [illegible] को प्रसन्नता हुई और [illegible] भी दश पुत्र थे पर [illegible] बड़ा था, [illegible] से यह उपाधि करने लगा कि [illegible] जाय छोटे [illegible] पकड़ लावे और पहाड़ [illegible] मूँद [illegible] मारे [illegible] कहे होंगे तिनकी छाती पर [illegible] जी [illegible] कोई न निकलने पावे [illegible] लड़कों [illegible] दुष्ट यह कंस, [illegible] है यश, [illegible] आया है जिसने [illegible]

उसे बुलाकर बहुत सा समझाया पर इसका कहना कुछ के जी में कुछ भी न आया, तब दुख पाय पछताय के कहने लगा कि ऐसे पूत होने से मैं अपूत ही क्यों न हुआ, कहते हैं जिस समय कुपूत घर में आता है तिसी समय यश धर्म्म जाता है। जब कंस आठ वर्ष का हुआ तब मगध देश पर चढ़ गया। वहाँ का राजा जरासन्ध बड़ा योधा था तिस्से मिल इससे मल्लयुद्ध किया, तो उसने कंस का बल लखि लिया, तब हार मान अपनी दो छोटी बेटियाँ ब्याह दीं—उनको ले पहिले मथुरा में आया और उग्रसेन से वैर बढ़ाया। एक दिन कोपकर अपने पिता से बोला कि तुम राम नाम कहना छोड़ दो, और महादेव का जप करो। इसने कहा—मेरे तो कर्त्ता दुःखहर्त्ता वही हैं जो उनको नहीं भजूँगा तो अधर्मी हो कैसे भवसागर पार हूँगा। यह सुन कंस ने खुनसाय बाप को पकड़ कर सारा राज्य ले लिया, और नगर में डौंडी फेर दी कि कोई यज्ञ, दान, तप, धर्म्म और राम का नाम लेने न पावै। ऐसा अधर्म्म बढ़ा कि, गौ ब्राह्मण और हरि के भक्त दुख पाने लगे और धरती अति बोझ से मरने लगी। जब कंस सब राजाओं का राज्य ले चुका तब एक दिन अपना दल ले राजा इन्द्र पर चढ़ चला, तहाँ मंत्री ने कहा कि महाराज इन्द्रासन बिन तप किये नहीं मिलता, आप बल का गर्व न करिये देखो गर्व ने रावण, कुम्भकरण को कैसा खो दिया कि जिनके कुल में एक भी न रहा।

इतनी कथा कह शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजा जब पृथ्वी पर अति अधर्म्म होने लगा तब पृथ्वी दुख पाय,

घरराय गाय का रूप बना, टकारती देवलोक मे गई और इन्द्र की सभा में जा शिर झुकाय उसने अपनी सब पीर कही कि महाराज ससार में असुर अति पाप करने लगे तिनके डर मे धर्म तो उठ गया यदि मुझे आज्ञा हो तो नरपुर छोड रसातल को जाऊँ। तब इन्द्र सब देवताओं को साथ ले ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा सुन सब को महादेव जी के निकट ले गये, महादेव भी सब को साथ ले वहाँ गये जहाँ क्षीर-समुद्र में नारायण सो रहे थे। उनको सोते जान ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र सब देवताओं को साथ ले खडे हो हाथ जोड विनती कर वेद स्तुति करने लगे—महाराजाधिराज! आपकी महिमा कौन कहि सकै, मत्स्यरूप हो वेद डूबत निकाले, कच्छपरूप बन पीठ पर गिरि धारण किया, वाराह बन भूमि को दाँत पर रख लिया, वामन होके राजा बलि को छला, परशुराम अवतार ले क्षत्रियों को मार पृथ्वी कश्यप मुनि को दी, रामावतार लिया तब महा दुष्ट रावण का बध किया, और जब-जब तुम्हारे भक्तों को दैत्य दुःख देते हैं तब-तब आप तिनकी रक्षा करते हैं। नाथ! अब कस के सताने से अति व्याकुल हो पुकार करती है तिसकी वेग सुधि लीजे, असुरों को मार साधुओं को सुख दीजै, ऐसे गुणगाय देवताओं ने कहा तब आकाशवाणी हुई, सो ब्रह्मा देवताओं को समझाने लगे यह जो वाणी हुई सो तुम्हें आज्ञा दी है कि तुम सब देवी देवता ब्रजमण्डल जाय मथुरा नगरी मे जन्म लो, पीछे चार स्वरूप धर हरि भी अवतार लेंगे, वसुदेव के घर देवकी की कोख में, और बाल लीला कर नन्द यशोदा को सुख देंगे। इसी रीति से जब ब्रह्मा ने बुझा कर कहा तब सुर मुनि

किन्नर गन्धर्व सब अपनी स्त्रियों समेत जन्म ले ले ब्रजमण्डल में यदुवंशी और गोप कहाये। और जो चारों वेद की ऋचाएँ थीं सो ब्रह्मा से कहने लगीं कि हम भी गोपी हो ब्रज में अवतार लें वासुदेव की सेवा करें इतना कह वे भी ब्रज में आई और गोपी कहलाईं। जब सब देवता मथुरापुरी में आ चुके तब क्षीर-समुद्र में हरि विचार करने लगे कि पहिले तो लक्ष्मण हो बलराम, पीछे वासुदेव हो मेरा नाम, भरत प्रद्युम्न शत्रुघ्न अनिरुद्ध और सीता रुक्मिणी का अवतार लें।

देवकीविवाह, बालकवध

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा—हे महाराज! कंस तो इस अनीति से मथुरा में राज्य करने और उग्रसेन दुःख भरने लगा। देवक जो कंस का चाचा था उस की कन्या देवकी जब व्याहने योग्य हुई तब उसने आ कंस से कहा कि यह लड़की किसको दें? वह बोला सूरसेन के पुत्र वसुदेव को दीजिये। इतनी बात सुनते ही देवक ने एक ब्राह्मण को बुलाया शुभ लग्न मुहूर्त ठहराय सूरसेन के घर टीका भेज दिया। तब तो सूरसेन भी बड़ी धूमधाम से बरात ले सब देश-देश के नरेश साथ ले मथुरा में वसुदेव को व्याहने आये, बरात नगर के निकट आई, सुन उग्रसेन देवक और कंस अपना दल ले आगे बढ़ नगर में ले गये, अति आदर मान से अगौनी कर, जनवासा दिया। खिलाय पिलाय सब बरातियों को मंडे के नीचे ले जा बैठाया और वेद की विधि से कंस ने वसुदेव को कन्यादान दिया। जिसके

तुर में पन्द्रह सहस्र घोड़े, चार हजार हाथी, अठारह सौ रथ, स-दासी अनेक दे कञ्चन के थाल भरे आभूषण रत्नजटित से र-भर अनगिनत दिये, और सब रानियों को भी अलङ्कार सहित गे पहिराय सब मिल, पहुँचाने को गये। तिस समय देववाणी ई कि अरे कंस जिसको तू पहुँचाने चला है तिसका आठवाँ गर्भ रा काल उपजेगा, उसके हाथ तेरी मौत है। यह सुनते ही कंस डर र मारे काँपने लगा और क्रोध कर देवकी के झोंटे पकड़ रथ से नीचे खैंच लाया और खड्ग हाथ में ले दाँत पीस पीस कहने लगा कि जिस पेड़ को जड़ ही से उखाड़िये तिसमें फूल फल काहे को लगेगा। अब इसी को मारूँ तो निर्भय राज्य करूँ, यह देख सुन वसुदेव मन में कहने लगे कि इस मूर्ख ने सन्ताप दिया। यह पुण्य और पाप नहीं जानता है। जो मैं अब क्रोध करता हूँ, तो कार्य्य बिगड़ेगा, तिससे इस समय क्षमा करना ही योग्य है।

चौ०—जो बैरी खैंचे तलवार। करे साधु तिसकी मनुहार॥
समझ मूढ़ सोई पछताय। जैसे पानी आग बुझाय॥

यह सोच समझ वसुदेव कंस के सन्मुख जा हाथ जोड़ बिनती कर कहने लगे कि सुनो पृथ्वीनाथ तुम सा बली संसार में कोई नहीं और सब तुम्हारी छाँह तले बसते हैं। ऐसे शूर हो स्त्री पर शस्त्र करना यह अति अनुचित है, और बहिन के मारने से महापाप होता है, तिस पर भी मनुष्य अधर्म्म तो करे जो जाने कि मैं कभी नहीं मरूँगा। इस संसार की तो यही रीति है, इधर जन्मा उधर मरा, करोड़ यत्न से पाप पुण्य कर कोई इस देह को पोषे पर यह कभी अपनी न होयगी और धन यौवन

राज्य भी न आवेगा काम, इसमें मेरा कहा मान लीजै और अपनी अबला आधीन बहिन को छोड़ दीजै, इतना सुन कंस अपना काल जान घबरा कर और भी झुँझलाया। तब बसुदेव सोचने लगे कि यह पापी तो असुरबुद्धि किए अपनी हठ की टेक पर है। जिससे इसके हाथ में यह बचे सो उपाय किया चाहिये। ऐसे विचार मन में कहने लगे अब तो इसने यों कह देवकी को बचाऊँ कि जो पुत्र मेरे होगा सो तुम्हें दूँगा। पीछे किसने देखी है लड़का हो न होय, कि यही दुष्ट मरे, यह अवसर तो टले फिर समझी जायगी। इस भाँति मन में ठान बसुदेव ने कंस से कहा—महाराज ! तुम्हारी मृत्यु इसके पुत्र के हाथ न होगी क्योंकि मैंने एक बात ठहराई है कि इसके जितने लड़के होंगे तितने मैं तुम्हें ला दूँगा। यह बचन मैंने तुम को दिया, ऐसी बात जब बसुदेव ने कही तब समझ के कंस ने मान ली और देवकी को छोड़ कहने लगा—हे बसुदेव ! तुमने अच्छा विचार किया जो मुझे भारी पाप से मुझे बचा लिया। इतना कह बिदा किये और अपने घर गये।

कितने एक दिन मथुरा में रहते भये जब पहला पुत्र देवकी के हुआ, तब बसुदेव ले कंस पै गये और रोता हुआ लड़का आगे धर दिया। देखत ही कंस ने कहा, बसुदेव ! तुम बड़े सत्यवादी हो मैंने आज जाना क्योंकि तुमने मुझ से कपट न किया। निर्मोही हो अपना पुत्र ला दिया इससे डर मुझे कुछ नहीं है यह बालक मैंने तुम्हें दिया। इतना सुन बालक ले दण्डवत् कर बसुदेव जी तो अपने घर आये और उसी समय नारद मुनि जी ने

जाय कंस से कहा--राजा! तुमने यह क्या किया जो बालक उलटा फेर दिया, क्या तुम नहीं जानते कि वसुदेव की सेवा करने को सब देवताओं ने ब्रज में आय जन्म लिया है, और देवकी के आठवें गर्भ मे श्रीकृष्ण जन्म ले सब राक्षसों को मार भूमि का भार उतारेंगे। इतना कह नारद मुनि ने आठ लकीरें खैंच गिनवाईं जब आठ ही आठ गिनती में आईं तब डर कर कंस ने लड़के समेत वसुदेव जी को बुलाय भेजा नारद मुनि तो यों समुझाय बुझाय चले गये और कंस ने वासुदेव से बालक ले मार डाला। ऐसे जब २ पुत्र हुये तब २ वसुदेव ले आये और कंस मार डाले, इसी रीति से छ बालक मारे तब सातवें गर्भ में शेषरूप जो श्रीभगवान तिन्हों ने आ वास किया। यह कथा सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव मुनि से पूछा महाराज! नारद मुनि जी ने जो अधिक पाप करवाया तिसका व्योरा समझा कर कहो, जिससे मेरे मन का सन्देह जाय। श्री शुकदेव जी बोले--राजा! नारद जी ने तो अच्छा विचारा कि यह अधिक अधिक पाप करे तो श्रीभगवान् तुरन्त ही प्रकट होवें॥

गर्भस्तुति

फिर शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजा जैसे गर्भ में हरि आये और ब्रह्मादिक ने गर्भस्तुति करी और दुनी जिस भाँति बलदेव जी को गोकुल ले गईं तिसी रीति से कथा कहता हूँ। एक दिन राजा कंस अपनी सभा मे आय बैठा और जितने दैत्य उसके थे उनको बुलाकर कहा सुनो सब देवता पृथ्वी

इस भाँति माया को समझाय श्रीनारायण बोले कि तू तो पहले जाकर यह कार्य्य करके नन्द के घर में जन्म ले पीछे वसुदेव के यहाँ अवतार ले, मैं भी नन्द के घर आता हूँ। इतना सुनते ही माया झट मथुरा में आई और मोहनी का रूप बन वसुदेव के गेह में पैठ गई।

चौ०—जो छिपाय गर्भ हर लिया। जाय रोहिणी को सो दिया॥
जामें सन पहिला आयान। भये रोहिणी के भगवान॥

इसी रीति से श्रावण सुदी चौदस बुधवार को बलदेव जी ने गोकुल में जन्म लिया और माया ने वसुदेव देवकी को जा स्वप्न दिया, कि मैंने तुम्हारा पुत्र गर्भ से जाय रोहिणी को दिया है, सो किसी बात की चिन्ता मत कीजो। सुनते ही वसुदेव देवकी जाग पडे और आपस में कहने लगे यह तो भगवान् ने भला किया पर कंस को इसी समय जताना चाहिये, नहीं तो क्या जानिये पीछे क्या दुःख दे, यों सोच समझ रखवालों से बुलाकर कहा। उन्होंने कंस को जा सुनाया कि, महाराज! देवकी का गर्भ अधूरा गया बालक कुछ न पूरा भया। सुनते ही कंस घबरा कर बोला कि तुम अबकी बेर चौकसी करियो क्योंकि मुझे आठवें गर्भ का डर है जो आकाश बाणी कह गई है।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजन्! बलदेव जी तो यों प्रगटे और जब श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ में आये तभी माया ने जा नन्द की रानी यशोदा के पेट में वास लिया। दोनों गर्भ से थीं कि एक पर्व में देवकी यमुना नहाने गई, वहाँ संयोग से

यशोदा भी आन मिली तो आपस में दुःख की चर्चा चली निदान यशोदा ने देवकी को वचन दे कहा कि तेरा बालक मैं रखूँगी अपना तुझे दूँगी। ऐसे वचन दे यह अपने घर आईं और वह अपने आईं। जब कंस ने जाना कि देवकी का आठवाँ गर्भ रहा, तब जा वसुदेव का घर घेरा चारों ओर दैत्यों की चौकी बैठा दी और वसुदेव को बुलाकर कहा, कि अब तुम मुझ से कपट मत कीजो। अपना लड़का ला दीजो तब तो मैंने तुम्हारा ही कहना मान लिया था।

ऐसे कह वसुदेव देवकी को बेड़ी हथकड़ी पहिराय एक कोठे में मूँदकर ताले पर ताले दे निज मन्दिर में आ, मारे डर के उपास कर सो रहा। फिर भोर होते ही वहीं गया, जहाँ वसुदेव देवकी थे, गर्भ का प्रकाश देख कहने लगा कि इस यमगुफा में मेरा काल है, मार तो डालूँ पर अपयश से डरता हूँ, क्योंकि अति बलवान् हो स्त्री को हनना योग्य नहीं, भला इसके पुत्र ही को मारूँगा। यों कह बाहर आ गज, सिंह, श्वान और अपने बड़े-बड़े योद्धा वहाँ चौकी को रखाये और आप भी नित चौकसी कर आवे पर एक पल भी कल न पड़े जहाँ देखे आठ पहर चौसठ घड़ी कृष्ण-रूप काल ही दृष्टि आवे तिसके भय से रात दिन चिन्ता में गँवावे।

इधर कंस की तो यह दशा थी, उधर वसुदेव और देवकी पूरे दिनों महाकष्ट में श्रीकृष्ण ही को मनाते थे कि इसी बीच भगवान् ने आ उन्हें स्वप्न दिया और इतना कह उनके मन का शोच दूर किया—हम वेग ही जन्म ले तुम्हारी चिन्ता मेटते हैं, तुम अब मत

पधराओ। यह सुन वसुदेव-देवकी जाग पड़े तो इतने में ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादिक सब देवता अपने-अपने विमान अधर में छोड़ अलख रूप, वसुदेव के गृह में आये और हाथ जोड़-जोड़, वेद गाय-गाय, गर्भस्तुति करने लगे। जिस समय उनको तो किसी ने न देखा पर वेद की ध्वनि सब ने सुनी। यह अचरज देख सब रखवाले अचम्भे में रहे और वसुदेव देवकी को निश्चय हुआ, कि भगवान वेग ही हमारे पीर हरेंगे।

श्री कृष्ण-जन्म, और कन्या-ग्रहण

श्रीशुकदेव जी बोले—राजा जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र जन्म लेने लगे, तिस काल सब ही के जी में ऐसा आनन्द उपजा कि दुख नाम को भी न रहा। हर्ष से बन उपबन लगे हरे हो-हो फलने फूलने, नदी नाले सरोवर भरने, तिन पर भाँति-भाँति के पक्षी कलोलें करने और नगर-नगर, गाँव-गाँव, घर-घर, मङ्गलाचार होने, ब्राह्मण यज्ञ रचने, दशों दिशा के दिक्पाल हर्षने, बादल ब्रजमण्डल पर फिरने, देवता अपने-अपने विमानों में बैठ आकाश से फूल बरसाने, विद्याधर, गन्धर्व, चारण, ढोल दमामे भेरी बजाय-बजाय गुण गाने लगे, और एक ओर उर्वशी आदि सब अप्सरा नाच रही थीं कि ऐसे समय भादों बदी अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्र में आधी रात को श्रीकृष्णचन्द्र ने जन्म लिया, और मेघवर्ण, चन्द्रमुख, कमल-नयन हो, पीताम्बर काछे मुकुट धरे, बैजन्ती माल और रत्न-जटित आभूषण पहरे चतुर्भुजरूप किये शङ्ख चक्र गदा पद्म लिये वसुदेव देवकी को दर्शन दिया। देखते ही अचम्भे में हो उन दोनों ने ज्ञान

से विचारा तो आदि पुरुष को जाना, तब हाथ जोड़ बिनती कर कहा—हमारे बड़े भाग्य जो आपने दर्शन दिया, और जन्म मरण का निबड़ा किया।

इतना कह पहिली कथा सब सुनाई, जैसे-जैसे कंस ने दुख दिया था। तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले—तुम अब किसी बात की चिन्ता मन में न करो, क्योंकि मैंने तुम्हारे दुख दूर करने ही को अवतार लिया है, पर इस समय मुझे गोकुल पहुँचा दो, और इसी बिरियाँ यशोदा के लड़की हुई है, सो कंस को ला दो, अपने जाने का कारण कहता हूँ सो सुनो।

दो०—नन्द यशोदा तप कियो, मोही सो मन लाय।
देख्यो चाहत बाल सुख, रहो कछू दिन जाय॥

फिर कंस को मार आन मिलूँगा, तुम अपने मन में धैर्य्य धरो, ऐसे वसुदेव देवकी को समझाय श्रीकृष्ण बालक बन रोने लगे, और अपनी माया फैला दी। तब तो वसुदेव देवकी का ज्ञान गया और जाना कि हमारे पुत्र भया। यह समझ दश सहस्र गाय मन में सङ्कल्प कर लड़के को गोद में उठा छाती से लगा लिया, उसका मुख देख-देख दोनों लम्बी साँसें भर-भर आपस में कहने लगे—जो किसी रीति से इस लड़के को भगा दीजै तो कंस पापी के हाथ से बचे। वसुदेव बोले—

चौ० विधना बिन राखे नहिं कोई। कर्म लिखा सोइ फल होई॥
तब कर जोर देवकी कहे। नन्द मित्र गोकुल में रहे॥
पीर यशोदा हरे हमारी। नारि रोहिणी तहाँ निहारी॥

इस बालक को वहाँ ले जाओ, या सुन वसुदेव अकुला कर

कहने लगे कि इस कठिन बन्धन से छूट कैसे ले जाऊँ? ज्यों इतनी बात कही त्यों सब बेडी हथकडी खुल पडी। चारों ओर के किवाड खुल गये, पहरुये अचेत नींदवश भये। तब तो वसुदेव जी ने श्रीकृष्ण को सूप मे रख शिर पर धर लिया और झटपट ही गोकुल को प्रस्थान किया।

सो०—ऊपर बरसे देव, पीछे सिंह जु गुञ्जरे।
शोचत है वसुदेव, यमुना देखि प्रवाह अति॥

नदी तीर खडे हो वसुदेव विचारने लगे कि पीछे तो सिंह बोलता है, और आगे अथाह यमुना बह रही है अब क्या करूँ ऐसा कह भगवान का ध्यान धर यमुना मे पैठे। ज्यों ज्यों जात थे, त्यों त्यों नदी बढती थी जब नाक तक पानी आया तब तो ये निपट घबराय, इनको व्याकुल जान श्रीकृष्ण ने अपना पाँव बढाय हुँकार दिया। चरण छूते ही यमुना थाह हुई वसुदेव पार हो नन्द के पोर पर जा पहुँचे। वहाँ किवाड खुले पाये भीतर धस के देखे तो सब सोय पडे हैं। देवी ने ऐसी मोहनी डाली थी कि यशोदा को लडकी के होने की भी सुधि न थी। वसुदेवजी ने कृष्ण को तो यशोदा के निकट सुला दिया और कन्या को ले चल अपना पन्थ लिया। नदी उतर फिर आये जहाँ बैठी देवकी शोचती थी तहाँ कन्या दे वहाँ की कुशल कही। सुनत ही देवकी प्रसन्न हो बोली—हे स्वामी! हमे कंस अब मार डाले तो कुछ चिन्ता नहीं क्योंकि इस दुष्ट के हाथ से पुत्र तो बचा।

इतनी ... जी राजा परीक्षित से कहने

लगे कि जब वसुदेव लड़की को ले आये तब किवाड़ ज्यों के त्यों भिड़ गये, और दोनों ने हथकड़ियाँ बेड़ियाँ पहर लीं, कन्या रो उठी। रोने की धुनि सुन पहरुये जाग जो अपने-अपने शस्त्र ले-ले सावधान हो लगे तुपक छोड़ने, जिनका शब्द सुन लगे हाथी चिंघाड़ने, सिंह दहाड़ने और कुत्ते भौंकने। तिसी समय अँधेरी रात के बीच वर्षते मेह में एक रखवाले ने हाथ जोड़ कंस से कहा--महाराज! तुम्हारा बैरी उपजा, यह सुन कंस मूर्छित हो गिरा।

कंस-उपद्रव

बालक का जन्म सुनते ही कंस डरता काँपता उठ खड़ा हुआ, और खड्ग हाथ में ले गिरता पड़ता भैंडा। छूटे बालो पसीने में डूबा धुड़ड़ धुड़ड़ करता जा बहिन के पास पहुँचा। जब उसने हाथ से लड़की छीन ली, तब वह हाथ जोड़ बोली--अरे भैया! यह कन्या नहीं भानजी है इसे मत मार, यह मेरी पट पोछनी है। मारे हैं बालक छः जिनका दुःख मुझे अति सताता है, तिन काज कन्या को मार क्या पाप बढ़ाता है। कंस बोला--जीती लड़की तुझे न दूँगा, जो इसे ब्याहेगा सो मुझे मारेगा। इतना कह बाहर आ ज्यों चाहे कि फिराय कर पत्थर पर पटके त्योंही हाथ से छूट कन्या आकाश को गई और पुकार के यह कह गई--अरे कंस मेरे पटकने से क्या हुआ? तेरा बैरी कहीं जन्म ले चुका अब तू न बचेगा।

यह सुन कंस अकेला पैदल वहाँ आया जहाँ वसुदेव देवकी थे, आते ही उनके हाथ पाँव की हथकड़ी बेड़ी काट दी और हाथ जोड़ कर कहने लगा कि मैंने बड़ा पाप किया जो तुम्हारे पुत्र मारे। यह कलंक कैसे छूटेगा ? किस जन्म में मेरी गति होगी ? तुम्हारे देवता झूठे हुए जिन्हों ने कहा था कि देवकी के आठवें गर्भ से लड़का होगा सो न हुआ लड़की हुई, वह भी हाथ से छूट स्वर्ग को गई। अब दया कर मेरा दोष जी से मत रक्खो क्योंकि कर्म का लिखा कोई मेट नहीं सकता। इस संसार में आये से जीना-मरना, संयोग-वियोग मनुष्य का नहीं छूटता, जो ज्ञानी हैं सो मरना जीना समान ही जानते हैं और अभिमानी मित्र शत्रु कर मानते हैं। तुम तो बड़े साधु सत्यवादी हो जो हमारे हेतु अपने पुत्र ले आये।

ऐसे कह जब कंस बार बार हाथ जोड़ने लगा तब वसुदेव जी बोले—महाराज ! तुम सच कहते हो इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं, विधाता ने यही हमारे कर्म में लिखा था। यों सुन कंस प्रसन्न हो अति हित से वसुदेव देवकी को अपने घर ले आया और भोजन करवाय वस्त्र पहिराय बड़े आनंद भाव से दोनों को फिर वहीं पहुँचाय दिया और मन्त्री को बुला कर कहा कि देवी कह गई है तेरा बैरी जग में जन्मा। इससे अब देवताओं को जहाँ पाओ तहाँ मारो, क्योंकि उन्होंने मुझसे झूँठी बात कही थी कि आठवें गर्भ में तेरा शत्रु होगा। मन्त्री बोला—महाराज ! उनका मारना क्या बड़ी बात है वे तो जन्म के भिखारी हैं। जब आप कोपियेगा तभी वे भाग जायँगे, उनकी क्या सामर्थ्य है,

जो तुम्हारे सन्मुख हों, अथा आठ पहर ज्ञान ध्यान में रहना है, महादेव भाग धतूरा खाय, इन्द्र का न कुछ तुम पर बशाय, रहे नारायण सो सपाम नहीं जानें लक्ष्मी के साथ रहते हैं सुख माने।

कस बोला--नारायण को कहाँ पावें और किस विधि जीतें सो कहो। मन्त्री ने कहा--महाराज! जो नारायण को जीता चाहते हो तो जिनके घर में आठ पहर उनका वास है तिन ही का अब विनाश करो, ब्राह्मण, वैष्णव, योगी, यती, तपस्वी, संन्यासी, वैरागी आदि जितने हरि के भक्त हैं तिनमें लडके से ले बूढे तक एक भी जीता न रहे यह सुन कंस ने प्रधान से कहा--तुम सब को जा मारो। आज्ञा पाकर मन्त्री अनेक राक्षस साथ ले विदा हो नगर में जा गा, ब्राह्मण, बालक और हरिभक्तों को छल-छलकर ढूँढ ढूँढ मारने लगा।

कृष्ण-जन्मोत्सव

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले--महाराज! एक समय नन्द यशोदा ने पुत्र के लिए बड़ा तप किया! तहाँ श्री नारायण आय वर दिया कि तुम्हारे यहाँ जन्म लेंगे। जब भादों बदी अष्टमी बुधवार को आधी रात के समय श्रीकृष्ण आये, तब यशोदा ने जागते ही पुत्र का मुख देख नन्द को बुला अति आनन्द मना और अपना जीवन सुफल जाना। भोर होते ही नन्द जी ने पण्डित ज्योतिषियों को बुला भेजा, वे अपनी अपनी पोथी पत्रे ले आये, [illegible] को आसन दे आदर मान से बैठाया। उन्होंने शास्त्र की विधि

विश्व-दर्शन

। बोले—हे राजा ! एक दिन वसुदेव जी ने गर्ग
ज्योतिषी और यदुवंशियों के पुरोहित थे, बुला
गोकुल जा लड़के का नाम धर आओ।
हिणी गर्भ भा, भयो पूत है वादि।
आयु पैन्या यती, कहा नाम ता आदि॥
ो का पुत्र हुआ है सो भी तुम्हें बुलाय गये हैं।
प्रसन्न हो चले और गोकुल के निकट जा पहुंचे।
ने नन्द जी से आ कहा कि यदुवंशियों के
ो आते हैं। यह सुन नन्द जी आनन्द से ग्वाल
उठाये। और पाटम्बर के पाँवड़े डालते
पूजा कर आसन पर बैठाय, चरणामृत
कहने लगे—महाराज ! बड़े भाग्य हमारे
ने घर पवित्र किया। तुम्हारे प्रताप से
एक हमारे, कृपा कर तिनका नाम
रखना उचित नहीं, क्योंकि जो
के नाम धरने गये हैं,
जी के पुत्र को
लिये गर्ग
और न जानिये
मत करो,

साथ हो गोकुल स चल मथुरा आय कस स भेट कर भेंट दी, कौडी २ चुकाय अपनी लिखा हो अपनी बाट ली।

ज्योंही यमुना तीर पै आये, त्योंही समाचार सुन वसुदेव जी आ पहुँचे, नन्द जी से मिल कुशल क्षेम पूँछ कहन लगे तुम सा सगा और मित्र हमारा ससार मे कोइ नहीं क्योंकि जब हमें भारी विपत्ति भई, तब गर्भवती रोहिणी तुम्हारे यहाँ भेज दी, उसके लडका हुआ सो तुमने पाल बडा किया, हम तुम्हारा गुण कहाँ तक बखानें इतना कह फर पूछा कहो राम कृष्ण और यशोदा रानी आनन्द से हैं? नन्द जी बोले--आप की कृपा से सब भले हैं, और हमारे जीवनमूल तुम्हारे बलदेव जी भी कुशल से हैं, कि जिन के होते ही तुम्हारे पुण्य प्रताप से हमारे पुत्र हुआ पर एक तुम्हारे ही दुख से हम दुखी हैं। वसुदेव कहने लगे--मित्र! विधाता स कुछ न वश आवै, कर्म्म की रेखा किसी स मटी न जाय, इस से ससार मे आय दुख पीर पाय, कौन पछताय, ऐसा ज्ञान जनाय के कहो।

चौ०—तुम घर जाहु वेग आपन। कीन्हे कस उपद्रव घने॥
बालक ढूँढ मँगावे नीच। दुष्ट साधु पर जाकी मीच॥

तुम तो सब यहाँ चले आये हो, और कस के दूत ढूँढत फिरत हैं। न जानिये कोइ दुष्ट जाय गोकुल में उपाधि मचावै। यह सुनते ही नन्द जी अकुला कर सब को साथ लिए शोचत मथुरा से गोकुल को चले।

विश्व-दर्शन

श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजा ! एक दिन वसुदेव जी ने गर्ग मुनि को जो बडे ज्योतिषी और यदुवंशियो के पुरोहित थे, बुला कर कहा कि तुम गोकुल जा लडके का नाम रख आओ।

दो०—गई रोहिणी गर्भ सो, भयो पूत है ताहि।
कितो आयु कैसा बली, कहा नाम ता आहि॥

और नन्द जी का पुत्र हुआ है सो भी तुम्हें बुलाय गये हैं। सुनत ही गर्ग मुनि प्रसन्न हो चले और गोकुल के निकट जा पहुचे। तिसी समय किसी ने नन्द जी से आ कहा कि यदुवंशियो के पुरोहित गर्ग मुनि जी आते हैं। यह सुन नन्द जी आनन्द से ग्वाल बाल संग कर भेंट ले उठ धाये। और पाटम्बर के पाँवडे डालते बाजे गाजे से ले आये। पूजा कर आसन पर बैठाय, चरणामृत ले, स्त्री पुरुष हाथ जोड कहने लगे—महाराज ! बडे भाग्य हमारे जो आपने दया कर दर्शन दे घर पवित्र किया। तुम्हारे प्रताप से दो पुत्र हुए हैं, एक रोहिणी के एक हमारे, कृपा कर तिनका नाम धरिये। गर्ग मुनि बोले—ऐसे नाम रखना उचित नहीं, क्योंकि जो यह बात फैले कि गर्ग मुनि गोकुल में लडको के नाम धरन गये हैं, और कंस सुन पावे तो वह यह जानेगा कि देवकी के पुत्र को वसुदेव के मित्र के यहाँ कोई पहुँचा आया है। इसी लिये गर्ग पुरोहित गया है, यह समझ मुझे पकड मँगावेगा। और न जानिये तुम पर भी क्या उपाधि लावे, इससे तुम फैलाव कुछ मत करो, चुपचाप घर में नाम धरवा लो।

नन्द बोले—गर्ग जी! तुमने सच कहा। इतना कह घर के भीतर ले जाय बैठाया। तब गर्ग जी ने नन्द जी से दोनों की जन्म-तिथि और समय लग्न साध नाम ठहराय कहा—सुनो नन्द जी! वसुदेव की नारी रोहिणी के पुत्र के तो इतने नाम होयँगे—संकर्षण, रेवतीरमण, बलदाऊ, बलराम, कालिन्दीभेदन, हलधर, बलवीर! और कृष्ण-रूप जो तुम्हारा लड़का है उसके नाम तो अगणित हैं, पर किसी समय वसुदेव के यहाँ जन्मा इससे वासुदेव नाम हुआ। और मेरे विचार में आया है कि, ये दोनों बालक तुम्हारे चारों युगों में जब जन्मे हैं तब साथ ही जन्मे हैं।

नन्द जी बोले—इनके गुण कहो। गर्ग मुनि ने उत्तर दिया—ये दूसरे विधाता हैं। इनकी गति कुछ जानी नहीं जाती, पर मैं यह जानता हूँ, कंस को मार भूमि का भार उतारेंगे। ऐसे कह गर्ग मुनि चुपचपाते चले गये, और वसुदेव से जा सब समाचार कहे।

आगे दोनों बालक गोकुल में दिन २ बढ़ने लगे, और बाल-लीला कर कर नन्द यशोदा को सुख देने लगे। नीले, पीले, झगले पहने, माथे पर छोटी छोटी लटुरियाँ बिथुरी हुईं, यंत्र गंडे बाँधे, कठले गले में डाले, खिलौने हाथों में लिये, खेलते आँगन के बीच घुटनों चल चल २ गिर गिर पड़ें और तोतली २ बातें करें। रोहिणी और यशोदा पीछे लगी फिरें, इसलिये कि कहीं लड़के किसी से डर ठोकर खा न गिरें। जब छोटे २ बछड़ों और बछियाओं की पूँछ पकड़ २ उठें और गिर २ पड़ें, तब यशोदा और रोहिणी अति प्यार से उठाय छाती से लगाय दूध पिलाय भाँति २ के लाड़ लड़ावें।

जब श्रीकृष्ण बड़े भये तो एक दिन ग्वाल बाल साथ ले ब्रज में दधि माखन की चोरी को गये।

चौ०—सूने घर में ढूँढैं जाय। जो पावैं सो देयँ लुटाय॥

जिनको घर में सोते पावें तिनकी धरी ढँकी चहेंडी उठा लावैं जहाँ छींके पर रक्खा देखें, तहाँ पीढे पर पटरा, पटरे पै उखूखल धर साथी को खड़ा कर उसके ऊपर चढ़ उतार लें, कुछ खावें और कुछ लुटाय दें, ऐसे गोपियो के घर घर नित्य चोरी कर आवैं।

एक दिन सब ने मता किया, और गेह में मोहन को आने दिया। ज्यों घर भीतर पैठ चाहें, कि माखन दही चुरावैं, तो गोपियों ने जाय पकड़ कर कहा—दिन २ आते थे निशि भोर, अब कहाँ जाओगे माखन चोर! यों कह सब गोपी मिल कन्हैया को लिये यशोदा के पास उलहना देने चलीं, तब श्रीकृष्ण ने ऐसा छल किया कि उसके लड़के का हाथ उसे पकड़ा दिया, और आप दौड़ अपने ग्वाल बालों का संग लिया। वे चलीं २ नन्दरानी के निकट आय पाँवों पड़ बोलीं—जो तुम बुरा न मानो तो हम कहें, जैसी कुछ उपाधि कृष्ण ने ठानी है।

दो०—दूध दही माखन मही, बचै नहीं ब्रज माझ।
ऐसी चोरी करत हैं, फिरत भोर अरु साझ॥

जहाँ कहीं धरा पाते हैं, तहाँ से निधड़क उठा लाते हैं, कुछ खाते हैं और लुटाते हैं, जो कोई इनके मुख में दही लगा बत ... [illegible] कर कहते हैं, तूनेई तो लगाया है। ...

...ते थे। आज हमने पकड़ पाया।

दिखाने लाई है। यशोदा बोली—नहिन तुम किसका लड़का पकड़ लाई, कल से तो मेरा कुँवर कन्हाई घर से बाहर भी नहीं निकला। ऐसा ही सच बोलती हो? यह सुन और अपना ही बालक हाथ में देख, सब हँस कर लजाय रही, तब यशोदा जी ने कृष्ण को बुलाय के कहा—पुत्र! तुम किसी के यहाँ मत जाओ जो चाहिये सो घर में से ले खाओ।

सो०—सुन के कान्ह कहत तुतराय। मत मैया तू इन्हें पतियाय॥
झूठी गोपी झूठी बोलें। मेरे पीछे लागी डोलें॥

कभी दोहनी बछड़ा पकड़वाती हैं। कभी घर की टहल कराती हैं, मुझे द्वारे रखवाली बैठाय अपने काज को जाती हैं। झूठ मूठ आय तुम से बातें लगाती हैं। यह सुन गोपी हरि मुख देख देख मुस्करा कर चली गई।

आगे एक दिन कृष्ण बलराम सखाओं के संग घर में खेलते थे, कि जो कान्ह ने मट्टी खाई, तो एक सखा ने यशोदा से जा लगाई। यह रोष कर हाथ में छड़ी ले उठ धाई, माँ को रिस भरी आती देख मुँह पोछ कर डर कर खड़े हो रहे, इन्होंने जाते ही कहा, क्यों रे तूने माटी क्यों खाई? कृष्ण डरते काँपते बोले—माँ! तुझ से किसने कहा? ये बोली तेरे सखा ने? तब मोहन ने कोप कर सखा से पूँछा—क्या रे मैंने मट्टी कब खाई है? वह डरि कर बोला—मैया! मैं तेरी बात कुछ नहीं जानता, क्या कहूँगा? जो कान्ह सखा से बतराने लगे, तो यशोदा ने उन्हें जा पकड़ा। तब कृष्ण कहने लगे—मैया तू मत रिसाय, कहीं भी मट्टी खाते हैं? वह बोली—मैं तेरी अटपटी बात नहीं

सुनती जो सदा है, तो अपना मुख दिखा। ज्यों श्रीकृष्ण ने मुख खोला तो उस में तीन लोक दृष्टि आये तब यशोदा को ज्ञान हुआ, तो मन में कहने लगी, कि मैं बड़ी मूर्ख हूँ जो त्रिलोकी के नाथ को अपना सुत कर मानती हूँ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी राजा परीक्षित से बोले—हे राजा! जब नन्दरानी ने ऐसा जाना, तब हरि ने अपनी माया फैलाई, इतने में मोहन को यशोदा प्यार कर कण्ठ लगाय घर ले आई।

दाम-बन्धन

एक दिन दही मथने की बिरियाँ जान भोर ही नन्दरानी उठीं, और सब गोपियों को जगाय बुलाय ले आय झाड़ बुहार लीप पोत अपनी मथनियाँ ले ले दही मथन लगीं। तहाँ नन्द महरि भी एक बड़ा सा कोरा चरुआ ले एडुए पर रख चौकी बिछवाती दई मँगाय टटकी ? दहेड़ियाँ बाँध बाँध रामकृष्ण के लिये बिलोवन बैठी। तिस समय नन्द के घर में ऐसा शब्द दही मथने का हो रहा था, कि जैसे मेघ गर्जता हो। इतने में कृष्ण जागे तो रो रो माँ माँ कर पुकारने लगे। उनका पुकारना किसी ने न सुना तब आप ही यशोदा के निकट आये, और आँखें डबडबाय अनमने हो सुसक सुसक तुतलाय तुतलाय कहने लगे कि माँ, तुझे कै बेर बुलाया? पर मुझे कलेऊ देने न आई, तेरा काज अब तक नहीं निबड़ा। इतना कह मचल पड़े, दई चरुए से निकाल दोनों हाथ डाल लगे मारन काढ़ काढ़

कपने, आँगन लटपटन औंर पौर पटक पटक आँचल खैंच २ लेन, तब नन्दरानी झुनझुनाय मुँह बनाय के बोली—बेटा यह क्या बान निकाली है।

चौ०—चल हट मुझे खिझाऊ है। कृष्ण कहे अब मैं नहिं लूँ॥
पहिले क्यों नहिं दीनो मात। अब तो मेरी लेय बलाय॥

निदान यशोदा ने फुसलाय प्यार से मुँह चूम गोद में उठा लिया। और दधि माखन रोटी खान को दिया, हरि हँस २ खाते थे नन्द महरि आँचल से ओट किये खिला रही थी, इसलिये कि मत किसी की दीठ लगे।

इस बीच एक गोपी ने आ कहा कि तुम तो यहाँ बैठी हो वहाँ चूल्हे पर से सब दूध उफन गया। यह सुनते ही झट कृष्ण को गोद से उतार उठ धाई और जाय दूध बचाया। यहाँ कान्ह दही मही के भाजन फोड़ दई तोड़ माखन भरी कमोरी ले ग्वाल बालों में आय। एक उलूखल औंधा धरा पाया तिस पर जा बैठे। और चारों ओर सखाओं को बैठाय लगे आपस में हँस २ बाँट २ माखन खान।

इतने में यशोदा दूध उतार आय देखें तो आँगन और निवारे में दही मही की कीच हो रही है। तब तो सोच समझ हाथ में छड़ी ले निकली, और ढूँढती २ वहाँ आई जहाँ श्रीकृष्ण मण्डली बनाये, माखन खाय खिलाय रहे थे, जाते ही पीछे से जो कर धरा, तो हरि माँ को देखते ही रोकर हा हा खाय लगे कहने कि माँ गोरस किसने लुटाया, मैं नहीं जानूँ मुझे छोड़ दे। ऐसे दीन मन यशोदा हँस कर हाथ से छड़ी डाल, और आनन्द में

मग हो रिस के मिस कण्ठ लगाय, घर लाय कृष्ण को ऊखल से बाँधने लगी। तब श्रीकृष्ण ने ऐसा किया कि जिस रस्सी से बाँधे वही छोटी होय। यशोदा ने सारे घर की रस्सियाँ मँगाई तौ भी बाँधे न गये। निदान माँ को दुखित जान आप ही बँधाई दिये। नन्दरानी बाँध गोपियों को खोलने की सौंह दे फिर घर की टहल करने लगी।

प्रलम्ब-वध

इतनी कथा कह शुकदेव जी बोले—महाराज! अब मैं ऋतु वर्णन करता हूँ, कि जैसे श्री कृष्णचन्द्र ने तिन में लीला करी सो चित्त दे सुनो,प्रथम ग्रीष्म ऋतु आई, उसने आते ही सब संसार का सुख ले लिया, और धरती आकाश को तपाय अग्निसम किया, पर कृष्ण के प्रताप से वृन्दावन म सदा वसन्त ही रहै, जहाँ घने २ कुञ्जों के वृक्षों पर बेलें लहलहा रहीं, बड़े २ के फूल फूले हुए तिन पर भौंरों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे, आमों की डालियों पर कोयल कुहुक रही। ठण्डी २ छाहीं में मोर नाच रहे, सुगन्ध लिए मीठी २ पवन बह रही, और एक ओर बन के यमुना न्यारी ही शोभा दे रही थी। तहाँ कृष्ण बलराम गाय छोड सब सखा समेत आपस मे आठ २ खेल खेल रहे थे कि इतने में कंस का पठाया ग्वाल का रूप बनाय प्रलम्ब नाम राक्षस आया। उसे देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र ने बलराम जी को सैन से कहा।

चौ०—अपनो सखा नहीं बल बीर। कपट रूप यह असुर शरीर॥

फेकने, आंगन लथेड़न और पाँव पटक पटक आँचल खैंच २ रोने, तब नन्दरानी जनराय मुँझलाय के बोली—बेटा यह क्या चाल निकाली है।

चौ०—चल उठ तुझे कलेऊ दूँ। कृष्ण कहे अब मैं नहिं लूँ॥
पहिले क्यों नहिं दीनो माय। अब तो मेरी लेय बलाय॥

निदान यशोदा ने झुंमलाय प्यार से मुँह चूँम गोद में उठा लिया। और दधि माखन रोटी खाने को दिया, हरि हँस २ खाते थे नन्द महरि अँचल की ओट किये खिला रही थी, इसलिये कि मत किसी की दीठ लगे।

इस बीच एक गोपी ने आ कहा कि तुम तो यहाँ बैठी हो वहां चूल्हे पर से सब दूध उफन गया। यह सुनते ही झट कृष्ण को गोद से उतार उठ गई और जाकर दूध बचाया। यहाँ कान्ह दही मही के भाजन फोड़ दई लोट माखन भरी कमोरी ले ग्वाल बालों में आये। एक उखल औंधा धरा पाया तिस पर जा बैठे। और चारों ओर सखाओं को बैठाय लगे आपस में हँस २ बाँट २ माखन खाने।

इतने में यशोदा दूध उतार आय देखें तो आँगन और तिवारे में दही मही की कीच हो रही है। तब तो सोच समझ हाथ में छड़ी ले निकली, और ढूँढती २ वहाँ आई जहाँ श्रीकृष्ण मण्डली बनाये, माखन खाय खिलाय रहे थे, जाते ही पीछे से जो कर धरा, तो हरि माँ को देखते ही रोकर हा हा खाय लगे कहने कि माँ गोरस किसने लुटाया, मैं नहीं जानूँ मुझे छोड़दे। ऐसे दीन वचन सुन यशोदा हँस कर हाथ से छड़ी डाल, और आनन्द में

मग्न हो रिस के मिस कण्ठ लगाय, घर लाय कृष्ण को ऊखल से बाँधने लगी। तब श्रीकृष्ण ने ऐसा किया कि जिस रस्सी से बाँधे वही छोटी होय। यशोदा ने सारे घर की रस्सियाँ मँगाईं तो भी बाँधे न गये। निदान माँ को दुखित जान आप ही बँधाई दिये। नन्दरानी बाँध गोपियों को खोलने की सौंह दे फिर घर की टहल करने लगी।

प्रलम्ब-वध

इतनी कथा कह शुकदेव जी बोले—महाराज! अब मैं ऋतु वर्णन करता हूँ, कि जैसे श्री कृष्णचन्द्र ने तिन में लीला करी सो चित्त दे सुनो,प्रथम ग्रीष्म ऋतु आई, उसने आते ही सब संसार का सुख ले लिया, और धरती आकाश को तपाय अग्निसम किया, पर कृष्ण के प्रताप से वृन्दावन में सदा बसन्त ही रहे, जहाँ घने २ कुञ्जों के वृक्षों पर बेलें लहलहा रहीं, बर्ण २ के फूल फूले हुए तिन पर भौंरों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे, आमों की डालियों पर कोयल कुहुक रही। ठण्डी २ छाहीं में मोर नाच रहे, सुगन्ध लिए मीठी २ पवन बह रही, और एक ओर बन के यमुना न्यारी ही शोभा दे रही थी। तहाँ कृष्ण बलराम गाय छोड सब सखा समेत आपस में अनूठे २ खेल खेल रहे थे कि इतने में कंस का पठाया ग्वाल का रूप बनाय प्रलम्ब नाम राक्षस आया। उसे देखत ही श्रीकृष्णचन्द्र ने बलराम जी को सैन ... कहा।

... ।—अपनो सखा नहीं बल वीर। कपट रूप

यारे बध को करो उपाय । ग्वाल रूप मारो नहिं जाय ॥
जब यह रानै रूप आपनो । तब तुम याही तत्क्षण हनो ॥

इतनी बात बलदेव जी को जताय कृष्ण जी ने प्रलम्ब को हँस कर पास बुलाय हाथ पकड़ के कहा ।

चौ०—सजे नीको भेष तिहारो । भलो कपट बिन मित्र हमारो ।

यों कह उसे साथ ले आधे ग्वालबाल बाँट लिये । और आधे बलराम जी को दे, दो लड़का को बैठाय लगे फल फूलों का नाम बताने और पूँछने । इसमें बताते ? कृष्ण हारे, बलदेव जीते । तब कृष्ण की ओर वाले, बलदेव जी व साथियों को काँधे पर चढ़ाय ले चले, तहाँ प्रलम्ब बलराम जी को सब के आगे ले भागा और वन में जाय उसने अपनी देह बढ़ाई । जिस समय उस काले २ पहाड़ से राक्षस पर बलदेव जी ऐसे शोभायमान थे, जैसे श्याम घटा पर चन्द्रमा और कुण्डल की दमक बिजली सी चमकती थी, पसीना मेह सा बरसता था । शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि—महाराज ! ज्यों अकेला पाय वह बलराम जी को मारने को हुआ त्यों ही उन्होंने मारे घूँसों के उसे मार गिराया ।

वर्षा-शरद ऋतु वर्णन

श्रीशुकदेव मुनि बोले—महाराज ! ग्रीष्म की अति अनीति देख नृप पावस प्रचण्ड पृथ्वी के पशु पक्षी जीव जन्तुओं की दया विचार चारों ओर से दल बादल साथ ले लड़न को चढ़ आया । जिस समय घन जो गर्जता था सोई तो धौंसा बाजता था और वर्ण २ की घटा जो घिर आई थीं, सोई शूरवीर रावत थे,

जिनके बीच बिजली की दमक शस्त्र की सी चमक थी, बगपाँत ठौर २ ध्वजा सी फहराय रही थी, दादुर मोर कड़खेतों की सी भाँति यश बखानते थे और बड़ी २ बूँदो की सी झड़ी लगी। इस धूम-धाम से पावस को आते देख, ग्रीष्म खेत छोड़ अपना जी ले भागा। उस काल वृन्दावन की भूमि ऐसी सुहावनी लगती थी कि जैसे शृङ्गार किये कामिनी और जहाँ तहाँ नदी, नाले, सरोवर भरे हुये तिन पर हस, सारस शोभा दे रह, ऊँचे-ऊँचे रुखों की डालियाँ झूम रहीं, उनमें पिक, चातक, कपोत, कीर, बैठ कोलाहल कर रहे थे और ठाँव-ठाँव सूहे कुसुम्भे जोड़े पहरे गोपी ग्वाल झूलों पर झूल-झूल ऊँच सुरों से मलारें गाते थे। उनके निकट जाय २ श्रीकृष्ण बलराम भी बाललीला कर २ अधिक सुख दिखाते थ। इस आनन्द से वर्षा ऋतु बीती, तब श्रीकृष्ण ग्वालबालो से कहने लगे—कि भैया अब तो सुखदाई शरद ऋतु आई।

चौ०—सबको सुख भारी अब जान्यो। स्वाद सुगन्ध रूप पहिचान्यो॥
निशि नक्षत्र उज्ज्वल आकाश। मानहुँ निर्गुण ब्रह्म प्रकाश॥
चारि मास जो विरमे गेह। भये शरद तिन तजे सनेह॥
अपन अपने काजन धाये। भूप चढे तकि देश पराये॥

वरुणलोकगमन, वैकुण्ठ चरित्र

शुकदेव जी बोले कि—महाराज! एक दिन नन्द जी ने सयम कर एकादशी व्रत किया, दिन तो स्नान, ध्यान, भजन, जप, पूजा में काटा और रात्रि जागरण में बिताई। जब छ घरी रात रही

याते यत को करो उपाय। ग्वाल रूप मारो नहिं जाय॥
जब यह धरै रूप आपनो। तब तुम याही तत्क्षण हनो॥

इतनी बात बलदेव जी को जताय कृष्ण जी ने प्रलम्ब को लै कर पास बुलाय हाथ पकड़ के कहा।

चौ०—सबने नीको भेष निहारो। भलो कपट निन मित्र हमारो।

यों कह उसे साथ ले आधे ग्वालबाल बाँट लिए। और आधे बलराम जी को दे, दो लड़का को बैठाय लगे फल फूलों का नाम बताने और बूँझने। इसमें बताते २ कृष्ण हारे, बलदेव जीते। तब कृष्ण की ओर वाले, बलदेव जी के साथियों को काँधे पर चढ़ाय ले चले, तहाँ प्रलम्ब बलराम जी को सब से आगे ले भागा और बन में जाय उसने अपनी देह बढ़ाई। तिस समय उस काल रूप पहाड़ से राक्षस पर बलदेव जी ऐसे शोभायमान थे, जैसे श्याम घटा पर चन्द्रमा और कुण्डल की दमक बिजली सी चमकती थी, पसीना मेह सा बरसता था। शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि—महाराज! ज्यों अकेला पाय वह बलराम जी को मारने को हुआ त्यों ही उन्होंने मारे घूँसा के उसे मार गिराया।

वर्षा-शरद ऋतु वर्णन

श्रीशुकदेव मुनि बोले—महाराज! ग्रीष्म की अति अनीति देख नृप पावस प्रचण्ड पृथ्वी के पशु पक्षी जीव जन्तुओं की दया विचार चारों ओर से दल बादल साथ ले लड़ने को चढ़ आया। तिस समय घन जो गर्जता था सोई तो धौंसा बाजता था और वर्णं २ की घटा जो घिर आई थीं, सोई ...

सनके बीच बिजली की दमक शस्त्र की सी चमक थी, बगपांति और २ ध्वजा सी फहराय रही थी, दादुर मोर कड़खेतों की सी भांति यश बखानते थे और बड़ी २ बूँदों की सी झड़ी लगी। इस धूम-धाम से पावस को आते देख, ग्रीष्म खेत छोड़ अपना जी ले भागा। उस काल वृन्दावन की भूमि ऐसी सुहावनी लगती थी कि जैसे शृङ्गार किये कामिनी और जहाँ तहाँ नदी, नाले, सरोवर भरे हुये तिन पर हंस, सारस शोभा दे रहे, ऊँचे-ऊँचे रुखों की डालियाँ झूम रही, उनमें पिक, चातक, कपोत, कीर, बैठ कोलाहल कर रहे थे और ठाँव-ठाँव सुहे कुसुम्भे जोड़े पहरे गोपी ग्वाल झूलों पर झूल-झूल ऊँचे सुरों से मलारें गाते थे। उनके निकट जाय २ श्रीकृष्ण बलराम भी बाललीला कर २ अधिक सुख दिखाते थ। इस आनन्द से वर्षा ऋतु बीती, तब श्रीकृष्ण ग्वालबालों से कहने लगे—कि भैया अब तो सुखदाई शरद ऋतु आई।

चौ०—सबको सुख भारी अब जान्यो। स्वाद सुगन्ध रूप पहिचान्यो॥
निशि नखत उज्ज्वल आकाश। मानहुँ निर्गुण ब्रह्म प्रकाश॥
चारि मास जो विरमे गेह। भये शरद तिन तजे सनेह॥
अपने अपने काजन धाये। भूप चढे तकि दश पराये॥

वरुणलोकगमन, वैकुण्ठ चरित्र

शुकदेव जी बोले कि—महाराज! एक दिन नन्द जी ने संयम कर एकादशी व्रत किया, दिन तो स्नान, ध्यान, भजन, जप, पूजा में काटा और रात्रि जागरण में बिताई। जब छ घरी रात रही

और द्वादशी भई तब उठ के इन्द्र शुद्ध कर भोर हुआ जान धोती अँगोछा झारी ले यमुना न्हाने चले तिनके पीछे कई एक ग्वाल भी हो लिये। तीर जाय प्रणाम कर कपड़े उतार नन्द जी जो नीर में बैठे तो वरुण के सेवक जो जल की चौकी देते थे कि कोई रात को नहाने न पावे, उन्होंने आ वरुण से कहा कि—महाराज! कोई इस समय यमुना में नहाय रहा है हम क्या आज्ञा होती है? वरुण बोला—उसे अभी पकड़ लाओ। आज्ञा पाते ही सेवक फिर वहाँ आये जहाँ नन्द जी स्नान कर जल में खड़े जप करते थे। आते ही अचानक नाग फाँस डाल नन्द जी को वरुण के पास ले गये तब नन्द जी के साथ जो ग्वाल गये थे तिन्होंने आय कृष्ण से कहा कि—महाराज! नन्दराय जी को वरुण के गण यमुना तीर से पकड़ वरुणलोक को ले गये। इतनी बात के सुनते ही श्री गोविन्द क्रोध कर धाये और पल भर में वरुण के पास जा पहुँचे, इन्हें देखते ही वह उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ विनती कर बोला—

चौ०—सुफल जन्म है आज हमारो। पायो यदुपति दरश तुम्हारो॥
कीजै दोष दूर सब मेरे। नन्द पिता इस कारण घेरे॥
तुमको सबके पिता बखाने। तुम्हरे पिता नहीं हम जाने॥

रात को नहाते देख अनजान गण पकड़ लाये, भला इसी मिस मैंने दर्शन आपका पाया। अब दया कीजै, मेरा दोष चित्त में न लीजै। ऐसे अति दीनता कर बहुत सी भेंट लाय नन्द और कृष्ण के आगे धर जब वरुण हाथ जोड़ शिर नाय सन्मुख खड़ा हुआ तब कृष्ण भेंट ले पिता को साथ लेकर वहाँ से चल वृन्दावन आये,

इनको देखते ही सब ब्रजवासी आय मिले। तिस समय बडे गोपों ने नन्दराय से पूँछा कि, तुम्हें वरुण के सेवक कहाँ ले गये थे? नन्द जी बोले—सुनो, वे वहाँ से पकड मुझे वरुण के पास ले गये तोही यहाँ से कृष्ण पहुँचे इन्हें देखते ही वह सिंहासन से उतर पाँवों पर गिर विनती कर कर कहने लगा— नाथ! मेरा अपराध क्षमा कीजै मुझसे अनजाने यह दोष हुआ, सो चित्त में न लीजै। इतनी बात नन्द जी के मुख से सुनते ही गोप आपस में कहने लगे—कि भाई! हमने तो यह तभी जाना था, जब कृष्णचन्द्र ने गोवर्द्धन धारण कर ब्रज की रक्षा करी कि नन्द महर के घर मे आदि पुरुष ने आ अवतार लिया है।

ऐसे आपस मे बतराय फिर सब गोपों ने हाथ जोड कृष्ण से कहा कि—महाराज! आपने हमे बहुत दिन भरमाया पर अब सब तुम्हारा भेद पाया, तुम्हीं जगत् के करता दुखहर्त्ता हो, त्रिलोकीनाथ दया कर वह हमे वैकुण्ठ दिखाइये। इतना वचन सुन कृष्ण जी ने क्षण भर में वैकुण्ठ रच उन्हें ब्रज ही को दिखाया। देखते ही ब्रजवासियों को ज्ञान हुआ, तो कर जोड सिर झुकाय के बोले—हे नाथ! तुम्हारी महिमा अपरम्पार है। हम नहीं कह सकते, पर आपकी कृपा से आज हमने यह जाना कि तुम नारायण हो भूमि का भार उतारने को ससार में जन्म ले आये हो शुकदेव जी बोले कि—महाराज! जब ब्रजवासियो ने इतनी बात कही तभी कृष्णचन्द्र ने सबको मोहित कर जो वैकुण्ठ की रचना रची थी सो उठाय ली, [illegible]ी माया फैलादी, तो सब गोपों ने अपना सा माया के वश हो कृष्ण को अपना पुत्र ही

कंस नारद-संवाद

शुकदेव जी बोले कि—महाराज ! एक दिन कृष्णचन्द्र बलराम साँझ समय धेनु चराय बन से घर को आते थे, इस बीच एक असुर अति बड़ा बैल बन आय गायों में मिला।

चौ०—आकाश लों देह तिह धरी। पीठ बड़ी पाथर सी करी॥
बड़े सींग तीखण दोउ खरे। रक्त नयन अति ही रिस भरे॥
पूँछ उठाय डकारत फिरै। रहि रहि भूतल गोबर करै॥
फड़क कन्ध हिलावै कान। भजे देव सब छोड़ि बिमान॥
खुर सों खोद नदी करारे। पर्वत उथल पीठ सो डारे॥
सब को त्रास भयो तिहिं काल। काँपे लोक पाल दिग पाल॥
पृथ्वी हलै शेष थर हरै। त्रिय आ धेनु गर्भ भू परें॥

उसे देखत ही सब गायें जिधर तिधर फैल गईं, और ब्रज-बासी दौड़ वहाँ आय, जहाँ सब से पीछे कृष्ण बलराम चले आते थे। प्रणाम कर कहा—महाराज ! आगे एक बड़ा बैल खड़ा है। उससे हमें बचाओ, इतनी बात के सुनते ही अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, तुम कुछ मत डरो उससे, वह नीच हमसे अपनी मीच चाहता है, वृषभ का रूप बनकर आया है। इतना कह आगे जाय उसे देख बोले बनमाली, कि आव हमारे पास, तू और किसी को क्यों डराता है, मेरे निकट किस लिए नहीं आता है। जो बैरी सिंह का कहावता है सो मृग पर नहीं धावता। देख मैं हूँ कालरूप गोविन्द मैंने तुझ से बहुतों को मार
है।

यों कह फिर ताल ठोंक ललकारे, आ मुझसे संग्राम कर। यह वचन सुनते ही असुर ऐसा क्रोध कर धाया कि मानो इन्द्र का वज्र आया। ज्यों ज्यों हरि उसे हटाते थे, त्यों त्यों वह सँभल सँभल बढ़ा आता था। एक बार ज्योंही उन्होंने उसे दे पटका, त्योंही खिजला कर उठा और दोनों सींगों में उसने हरि को दबाया, तब तो श्रीकृष्ण जी ने भी फुरती से निकल झट पाँव पर पाँव दे उसके सींग पकड़ यों मरोड़ा कि जैसे कोई गीला चीर को निचोड़े। निदान वह पछाड़ खाय गिरा और उसका जी निकल गया। तिस समय सब देवता लगे अपने अपने विमानों में से फूल बरसाने और गोपी गोप कृष्ण यश गाने। इस बीच राधिका जी ने आ हरि से कहा कि—महाराज! वृषभ रूप जो तुमने मारा इसका पाप हुआ। इससे अब तुम तीर्थ न्हाय आओ तब किसी को हाथ लगाओ। इतनी बात के सुनते ही प्रभु बोले कि, सब तीर्थों को मैं ब्रज ही में बुलाय लेता हूँ। यों कह गोवर्द्धन के निकट जाय दो औंडे कुण्ड खुदवाय, तहाँ सब तीर्थ देह धर आये, और अपना अपना नाम कह कह जल डाल डाल चले गये। तब कृष्णचन्द्र उनमें स्नान कर बाहर आ अनेक गोदान दे बहुत से ब्राह्मण जिमाय शुद्ध हुए। और उसी दिन से कृष्णकुण्ड राधाकुण्ड करके वे प्रसिद्ध हुए।

यह प्रसंग सुनाय शुकदेव मुनि बोले कि—महाराज! एक दिन नारद मुनि जी कंस के पास आये। और उसका कोप को जब उन्होंने बलराम और श्याम के होने के आने और कृष्ण के भले का भेद समझा

तब कंस क्रोध करके बोला—नारद जी, तुम सत्य कहते हो—

दो०—प्रथम दियो सुत आनि कै, मन परतीत बढ़ाय।
ज्यों ठग कछू दिखाइ कै, सर्बस ले भजि जाय॥

इतना कह वसुदेव को बुलाय पकड़ बाँधा और गर्दन पर हाथ रख अकुला कर बोला—

चौ०—मिला रहा कपटी तू मुझे। भला साधु जाना मैं तुझे॥
दिया नन्द के कृष्ण पठाय। देवी हमें दिखाई आय॥
मन में कछू कहौ मुख और। आज अवशि मारूँ यहि ठौर॥
मित्र सगा सेवक हितकारी। करै कपट सो पापी भारी॥

दो०—मुख मीठा मन विष भरा, रहै कपट के हेत।
आप काज परद्रोहिया, उससे भला जो प्रेत॥

ऐसे बक झक फिर कंस नारद जी से कहने लगा कि—महाराज! कुछ इनके मन का भेद हमने न पाया, लड़का हुआ और कन्या को ला दिखाया। जिसे कहा अधूरा गया, सोई जा गोकुल में बलदेव भया। इतना कह क्रोध कर होठ चबाय खड्ग उठाय जो चाहा कि वसुदेव को मारूँ, तो नारद मुनि ने हाथ पकड़ कर कहा—राजा! वसुदेव को तू आज रख, और जिसमें कृष्ण बलदेव आवें सो काज कर। ऐसे समुझाय बुझाय जब नारद मुनि चले गये तब कंस ने वसुदेव देवकी को तो एक कोठरी में मूँद दिया और आप भयातुर हो केशी नाम राक्षस को बुलाके बोला—

चौ०—महाबली तू साथी मेरा। बड़ा भरोसा मुझको तेरा॥
एक बार तू ब्रज में जा। रामकृष्ण हति मुझे दिखा॥

इतना वचन सुनते ही, केशी तो आज्ञा पा विदा हो दण्डवत् कर वृन्दावन को गया, और कंस ने शल, तोशल, चाणूर, अरिष्ट, व्योमासुर आदि जितने मंत्री थे, सबको बुलाय भेजा। वह आय तिन्हें समझा कर कहने लगा कि मेरा बैरी पास आय बसा है। तुमने अपने जी में सोच विचार करके मेरे मन का शूल जो खटकता है निकालो। मंत्री बोले—पृथ्वीनाथ! आप महाबली हो किससे डरते हो, राम कृष्ण का मारना क्या बड़ी बात है। कुछ चिन्ता मत करो। जिस छल बल से ये यहाँ आवें सोई हम मता बतावें।

पहिले तो यहाँ भली भाँति से एक ऐसी सुन्दर रङ्गभूमि बनवावें, कि जिसकी शोभा सुनत ही देखने को नगर २ गाँव २ के लोग उठ धावें। पीछे महादेव का यज्ञ कराओ, होम के लिये बकरे भैंसे मँगवाओ, यह समाचार सुन सब ब्रजवासी भेंट लावेंगे, तिनके साथ राम कृष्ण भी आवेंगे। तभी कोई मल्ल पछाड़ेगा, के कोई और ही बली पौर पै मार डालेगा, इतनी बात के सुनते ही,

सो०—कहै कंस मन लाय, भलो मतो मन्त्री दियो।
लीने मल्ल बुलाय, आदर कर बीरा दियो॥

फिर सभा कर अपने बड़े २ राक्षसों से कहने लगा कि, जब हमारे भानजे राम कृष्ण यहाँ आवें तब तुम में से कोई उन्हें मार डालियो, जो मेरे जी का खटका जाय। उन्हें यों समझाय पुनि महा[illegible] को बुलाय के बोला कि तेरे वश में मतवाला हाथी है [illegible] खड़ा रहना। जब वे दोनों आवें द्वार में पाँव

तुम हाथी से चिरवा डालियो। किसी भाँति भागने न पावै, जो दोनों को मारेगा सो मुँह मांगा धन पावैगा।

ऐसे सब को सुनाय समझाय बुझाय, कार्तिक बदि चौदस को शिव का यज्ञ ठहराय, कंस ने साँझ समय अक्रूर को बुलाय अति भाव भक्ति कर घर के भीतर ले जाय एक सिंहासन पर अपने पास बैठाय, हाथ पकड़ अति प्यार से कहा कि तुम यदुकुल में सब से बड़े ज्ञानी धर्मात्मा धीर हो, इस लिए तुम्हें सब जानते मानते हैं, ऐसा कोई नहीं जो तुम्हें देख सुखी न होय। इससे जैसे इन्द्र का काज बामन ने जा किया, जो छल कर बलि का सारा राज्य ले लिया। और राजा बलि को पाताल पठाया, तैसे तुम हमारा काम करो, तो एक बेर वृन्दावन जाओ और देवकी के दोनों लड़कों को जैसे बने तैसे छल बल कर यहाँ ले आओ। कहा है जो बड़े हैं, सो आप दुःख सह पराया काज करते हैं, तिस में तुम्हें तो सब बात की लाज हमारी है, अधिक क्या कहूं, जैसे बने तैसे उन्हें ले आओ, तो यहाँ सहज ही में मारे जायँगे। कै तो चाणूर पछाड़ेगा, कै कुवलयापीड गज पकड़ चीर डालेगा। नहीं तो मैं ही उठ मारूँगा अपना काज अपने हाथ सवारूँगा, और उन दोनों को मार पीछे उग्रसेन को हनूँगा, क्योंकि वह बड़ा कपटी है, मेरा मरना चाहता है। फिर देवकी के पिता देवक को आग से जलाय पानी में डुबोऊँगा, साथ ही उसके वसुदेव को मार हरिभक्तों को जड़ से खोऊँगा, तब निष्कण्टक राज्य कर जरासन्ध जो मेरा प्रचण्ड मित्र है उससे त्रास से नवखण्ड काँपते हैं और नरकासुर, बाणासुर आदि बड़े २ महाबली राक्षस जिनके

सेवक हैं, जिनसे जा मिलूँगा। जो तुम राम कृष्ण को ले आओ।

इतनी बातें कह कंस फिर अक्रूर को समझाने लगा कि, तुम वृन्दावन में जाय नन्द के यहाँ कहियो कि शिव का यज्ञ है, धनुष धरा है और अनेक २ प्रकार के कुतूहल वहाँ होवेंगे। यह सुन नन्द उपनन्द गोपों समेत बकरे भैंसे ले भेंट देने आवेंगे, तिनके साथ देखने को कृष्ण बलदेव भी आवेंगे। यह तो मैंने तुम्हें उनके लाने का उपाय बताय दिया। आगे तुम महान हो जो और उचित बनि आवै सो करियो, अधिक तुम से क्या कहूँ, कहा —

सो०-होय विचित्र बसीठ, जाहि बुद्धिबल आपनो।
पर कारज पर दीठ, करहि भरोसो ताहि को॥

इतनी बात के सुनते ही पहले तो अक्रूर ने अपने जी में विचारा कि जो मैं अब इसे कुछ भली बात कहूँगा, तो यह न मानेगा। इससे उत्तम यही है कि इस समय इसके मनभाती सुहाती बात कहूँ, ऐसे और भी ठौर कहा है, कि वही कहिये जो जिसे सुहाय। यों सोच विचार अक्रूर हाथ जोड शिर झुकाय बोला— महाराज! तुमने भला मता किया, यह वचन हमने भी शिर चढ़ाय मान लिया, होनहार पर कुछ बस नहीं चलता। मनुष्य अनेक मनोरथ कर धावता है, पर कर्म का लिखा ही फल पाता है। सोचते कुछ हैं और होता कुछ है, और किसी के मन का चेता होता नहीं। आगम बाँध —यह बात विचारी है, न जानिये कैसी होय, मैंने तुम्हारी . कल भोर को जाऊँगा

और रामकृष्ण को ले आऊँगा। ऐसे कह कंस से बिदा हो अक्रूर अपने घर आया।

अक्रूर-वृन्दावन गमन

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—महाराज! कार्तिक बदि त्रयोदशी को भोर के तड़के ही अक्रूर कंस के पास आय बिदा हो रथ पर चढ़ अपने मन में यों विचारता वृन्दावन को चला कि ऐसा मैंने क्या जप, तप, यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत किया है, कि जिसके पुण्य से यह फल पाऊँगा, अपने जान तो इस जन्म भर कभी हरि का नाम नहीं लिया, सदा कंस की संगति में रहा, भजन का भेद कहाँ पाऊँ। हाँ, अगले जन्म कोई बड़ा पुण्य किया हो उस धर्म के प्रताप का यह फल हो तो हो। जो कंस ने मुझे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द के लेने को भेजा है, तो अब जाय उनका दर्शन पाय, जन्म सुफल करूँगा।

महाराज! ऐसे विचार फिर अक्रूर अपने मन में कहने लगा कि, कहीं मुझे वे कंस का दूत न समझें? फिर आप ही सोचा कि जिनका नाम अन्तर्यामी है, वे तो मन की प्रीति मानते हैं, और सब मित्र शत्रु को पहचानते हैं। ऐसा कभी न समझेंगे, वरन् मुझे देखते ही गले लगाय दया कर अपना कोमल कमल सा कर मेरे शरीर पर धरेंगे। और मैं उस चन्द्रवदन की शोभा इकटक निरख अपने नयन चकोरों को सुख दूँगा, कि जिसका ध्यान ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि सब देवता सदा करते हैं।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा

कि, महाराज! इस भाँति सोच बिचार करते रथ हाँक इधर से तो अक्रूर जी गये। और उधर वन से गौ चराय ग्वालबालों समेत कृष्ण बलदेव भी आये तो इनसे उनसे वृन्दाबन के बाहर ही भेंट भई, हरि छबि दूर से देखते ही, अक्रूर रथ से उतर अति अकुलाय दौड उनके पाँवों पर जा गिरा। और ऐसा मगन हुआ कि मुँह से बोल न आया, महा आनन्द कर नयनों से जल बर्षावने लगा। तब श्रीकृष्ण जी उसे उठाय अति प्यार से मिल हाथ पकड घर लिवाय ले गये। वहाँ नन्दराय अक्रूर जी को देखते ही प्रसन्न हो उठकर मिले, और बहुत सा आदर मान किया, पाँव धुलवाय आसन दिया।

चौ०-लिये तेल मर्दनियाँ आये। उबटि सुगन्ध चुपरि अन्हवाये ॥
चौका पटा यशोदा दियो। षट्‌रस रुचि सो भोजन कियो ॥

जब अचवाय के पान खाने बैठे, तब नन्द जी उनकी कुशल चेम पूँछ बोले कि, तुम तो यदुबंशियो में बडे साधु हो सदा अपनी बडाई से रहे हो। कहो अब कंस दुष्ट के पास कैसे रहते हो, और वहाँ के लोगों की क्या गति है सो सब भेद कहो, अक्रूर जी बोले—

चौ०-जबतें कंस मधुपुरी भयो। तब तें सब ही को दुख दयो ॥
पूँछौ कहा नगर कुशलात। परजा दुखी होत हैं गात ॥
जौलों है मथुरा में कंस। तौलों कहाँ बचै यदुबंस ॥

...रु मेढ़े छेरीन कों, ज्यों खटीक रिपु होइ ॥
...त्यों परजा को कंस है, दु ख पावै सब कोइ

और रामकृष्ण को ले आऊँगा। ऐसे कह कंस से बिदा हो अक्रूर अपने घर आया।

अक्रूर-वृन्दावन गमन

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—महाराज! कार्तिक बदि त्रयोदशी को भोर के तड़के ही अक्रूर कंस के पास आय बिदा हो रथ पर चढ़ अपने मन में यों विचारता वृन्दावन को चला कि ऐसा मैंने क्या जप, तप, यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत किया है, कि जिसके पुण्य से यह फल पाऊँगा, अपने जान तो इस जन्म भर कभी हरि का नाम नहीं लिया, सदा कंस की संगति में रहा, भजन का भेद कहाँ पाऊँ। हाँ, अगले जन्म कोई बड़ा पुण्य किया हो उस धर्म के प्रताप का यह फल हो तो हो। जो कंस ने मुझे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द के लेने को भेजा है, तो अब जाय उनका दर्शन पाय जन्म सुफल करूँगा।

महाराज! ऐसे विचार फिर अक्रूर अपने मन में कहने लगा कि, कहीं मुझे वे कंस का दूत न समझें? फिर आप ही सोचा कि जिनका नाम अन्तर्यामी है, वे तो मन की प्रीति मानते हैं, और सब मित्र शत्रु को पहचानते हैं। ऐसा कभी न समझेंगे, वरन् मुझे देखते ही गले लगाय दया कर अपना कोमल कमल सा कर मेरे शरीर पर धरेंगे। और मैं उस चन्द्रवदन की शोभा इकटक निरख अपने नयन चकोरों को सुख दूँगा, कि जिसका ध्यान ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि सब देवता सदा करते हैं।

कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से

कि, महाराज ! इस भाँति सोच बिचार करते रथ हाँक इधर से तो अक्रूर जी गये। और उधर बन से गौ चराय ग्वालबालों समेत कृष्ण बलदेव भी आये तो इनसे उनसे वृन्दाबन के बाहर ही भेट भई, हरि छवि दूर से देखते ही, अक्रूर रथ से उतर अति अकुलाय दौड़ उनके पाँवों पर जा गिरा। और ऐसा मगन हुआ कि मुँह से बोल न आया, महा आनन्द कर नयनों से जल बरसावने लगा। तब श्रीकृष्ण जी उसे उठाय अति प्यार से मिल हाथ पकड़ घर लिवाय ले गये। वहाँ नन्दराय अक्रूर जी को देखते ही प्रसन्न हो उठकर मिले, और बहुत सा आदर मान किया, पाँव धुलवाय आसन दिया।

चौ०-लिये तेल मर्दनियाँ आये। उबटि सुगन्ध चुपरि अन्हवाये ॥
चोका पटा यशोदा दियो। षट्रस रुचि सों भोजन कियो ॥

जब अचवाय के पान खाने बैठे, तब नन्द जी उनकी कुशल क्षेम पूँछ बोले कि, तुम तो यदुबंशियों में बड़े साधु हो सदा अपनी बड़ाई से रहे हो। कहो अब कंस दुष्ट के पास कैसे रहते हो, और वहाँ के लोगों की क्या गति है सो मन भेद कहो, अक्रूर जी बोले —

चौ०-जबतें कंस मधुपुरी भयो। तब तें सब ही को दुख दयो॥
पूँछौ कहा नगर कुशलात। परजा दुखी होत हैं गात ॥
जौलों है मथुरा में कंस। तौलो कहाँ बचैं यदुबंस ॥

दो०-पशु मेंढ़े छेरीन को, ज्यों खटीक रिपु होइ ॥
त्यों परजा को कंस है, दुख पावै सब कोइ ॥

इतना कह फिर बोले कि, तुम तो कंस का ब्यौरा जानते हो हम अधिक क्या कहेंगे।

अक्रूर-दर्शन

श्रीशुकदेव जी बोले कि पृथ्वीनाथ! जब नन्द जी बातें कर चुके तब अक्रूर को कृष्ण बलराम सैन से बुलाय अलग ले गये।

चौ०—आदर कर पूछी कुशलात। कहो कका मथुरा की बात॥
हैं वसुदेव देवकी नीके। राजा वैर परयो तिनहीं पै॥
अति पापी है मामा कंस। जिन खोयो सिगरो यदुवंस॥

कोई यदुकुल का महारोग जन्म ले आया है, तिसी ने सब यदुवंशियों को सताया है। और सत्य पूछो तो वसुदेव देवकी हमारे लिये इतना दुःख पाते हैं, जो हमें न छिपाते तो वे इतना दुःख न पाते, यों कह कृष्ण फिर बोले—

चौ०—तुमसों कहा चलत उन कह्यो। तिनको सदा ऋणी हौं रह्यो॥
करत होयँगे सुरत हमारी। संकट में पावत दुख भारी॥

यह सुन अक्रूर जी बोले कि—कृपानाथ! तुम सब जानते हो क्या कहूँगा कंस की अनीति, उसकी किसी से नहीं है प्रीति, वसुदेव और उग्रसेन को नित्य मारने का विचार किया करता है। पर वे आज तक अपने प्रारब्ध से बच रहे हैं, और जब से नारद मुनि आय आपके होने का सब समाचार बुझाय कह गए हैं, तब से वसुदेव जी को बेड़ी हथकड़ी दे महा दुःख में रक्खा है, और कल आगे यहाँ महादेव का यज्ञ है और धनुष धरा है, सब कोई देखने को आवेंगे, सो तुम्हें बुलाने को मुझे भेजा है। यह कह कर

कि तुम जाय राम कृष्ण समेत नन्दराय को यज्ञ की भेंट समेत लिवाय लाओ, सो मैं तुम्हें लेने को आया हूँ। इतनी बात अक्रूर जी से सुन राम कृष्ण ने आय नन्द से कहा —

चौ०—कंस बुलायो है सुन तात। कहि अक्रूर कथा यहि बात॥
गोरस मेंढ़े छेरी लेऊ। धनुष यज्ञ है ताको देऊ॥
सब मिलि चलो साथ आपने राजा। बोले रहन न बने॥

जब ऐसे समझाय बुझाय कर श्रीकृष्णचन्द्र जी ने नन्द जी से कहा—तब नन्दराय जी ने उसी समय ढंढोरिये को बुलवाय सारे नगर में यों कह कर डौंडी फिरवा दी, कि कल सवेरे ही सब मिल कर मथुरा को जायँगे। राजा ने बुलाया है, इस बात को सुनने से भोर होते ही भेंट ले ले सकल ब्रजवासी आन पहुँचे और नन्द जी भी दूध, दही, माखन मेंढ़े, बकरे, भैंसे ले सकट जुतवाय उनपर साथ हो लिये और कृष्ण बलदेव भी अपने ग्वालबाल सखाओं को साथ ले रथ पर चढ़े।

चौ० —आगे भये नन्द उपनन्द। सब पाछे हलधर गोविन्द॥

श्रीशुकदेव जी बोले कि—पृथ्वीनाथ! एकाएकी श्रीकृष्णचन्द्र का चलना सुन सब ब्रज की गोपियाँ अति घबराय व्याकुल हो घर छोड़ हड़बड़ाय उठ धाईं और कुढ़ती झुकती गिरती पड़तीं वहाँ आईं, जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र का रथ था, आते ही रथ के चारों ओर खड़ी हो हाथ जोड़ बिनती कर कहने लगीं—हमें किस लिये छोड़ते हो ब्रजनाथ! सर्वस्व दिया तुम्हारे हाथ। साधु की तो प्रीति कभी घटती नहीं, कर की सी रेखा सदा रहती है, और मूढ़ की प्रीति नहीं ठहरती है, जैसे बालू की भीति, ऐसा तुम्हारा क्या अपराध

किया है ? जो हमें पीठ दिए जाते हो। यों श्रीकृष्णचन्द्र को सुनाय फिर गोपियाँ अक्रूर की ओर देख बोलीं —

चौ०—यह अक्रूर क्रूर है भारी। जानी कछु न पीर हमारी ॥
जा बिन छिन सब होन अनाथ। तेहि ले चले आपने साथ ॥
कपटी क्रूर कठिन मन भयो। वृथा अक्रूर नाम किन दियो ॥
हे अक्रूर कुटिल मतिहीन। क्यों दाहत अबला आधीन ॥

ऐसी कड़ी २ बातें सुनाय सोच सकोच छोड़ हरि का रथ पकड़ आपस में कहने लगीं—मथुरा की नारियाँ अति चंचल चतुर रूप गुण भरी हैं। उनके गुण और रस के वश हो वहीं ही रहेंगे बिहारी, तब काहे को करेंगे सुरति हमारी, उन्हीं के बड़े भाग हैं जो हरि के संग रहेंगी, हमारे जप तप करने में क्या ऐसी चूक पड़ी थी जिससे श्रीकृष्णचन्द्र बिछुड़ते हैं। यों आपस में कह फिर हरि से कहने लगीं कि तुम्हारा तो नाम है गोपीनाथ, किस लिए नहीं ले चलते हमें अपने साथ।

चौ०—तुम बिन छिन छिन कैसे कटे। पलक ओट भए छाती फटे ॥
हित लगाय क्यों करत बिछोह। निठुर निर्दयी धरत न मोह ॥
ऐसे तहाँ जपें सुन्दरी। सोचें दुख समुद्र में तरी ॥
चाहि रहीं इकटक हरि ओर। ठगी मृगी सी चन्द्र चकोर ॥
परहिं नयन से आंसू टूट। रहीं निठुर लट मुख पर छूट ॥

श्रीशुकदेव मुनि बोले—राजा! उस समय गोपियों की तो यह दशा थी, जो मैंने कही! और यशोदा रानी ममता कर पुत्र को कण्ठ लगाय रो रो अति प्यार से कहती थी कि बेटा जै दिन में तुम वहाँ से फिर आओ तै दिन के लिये कलेऊ ले आओ।

तहां जाय किसी से प्रीति मन कीजो, वेग आय अपनी जननी को दर्शन दीजो। इतनी बात सुन श्रीकृष्ण रथ से उतर सब को समझाय बुझाय मा से बिदा होय दण्डवत कर आशीश ले फिर रथ पर चढ़ चले तिस काल इधर से तो गोपियों समेत यशोदा जी अति अकुलाय रो २ कृष्ण २ कर पुकारती थीं। और उधर से श्रीकृष्ण रथ पर खड़े पुकार २ कहते जाते थे कि तुम घर जाओ, किसी बात की चिन्ता मत करो, हम पाँच चार दिन में ही, फिर कर आते हैं।

ऐसे कहते २ और देखत २ जब रथ दूर निकल गया, और धूलि आकाश तक छाई तिसमें रथ की ध्वजा भी न दिखाई दी। तब निराश हो एक बेर तो सब की सब नीर बिन मीन की भाँति तड़फड़ाय मूर्छा खाय गिरीं। पीछे कितनी एक बेर में चेत कर उठीं, और अवधि की आशा मन में धर धैर्य कर, इधर यशोदा जी तो सब गोपियों को ले वृन्दावन को गईं। और उधर श्रीकृष्णचन्द्र सब समेत चले २ यमुना तीर आ पहुँचे। तहाँ ग्वालबालों ने जल पिया और हरि ने भी एक बड़ की छाँह में रथ खड़ा किया। जब अक्रूर जी ने नहाने का विचार कर रथ से उतरे, तब कृष्ण चन्द्र ने नन्दराय से कहा कि आप सब ग्वालबालों को ले आगे चलिये, चचा अक्रूर स्नान कर लें तो पीछे से हम भी आ मिलते हैं।

यह सुन सब को ले नन्द जी आगे बढ़े और अक्रूर जी कपड़े खोल हाथ पाँव धोय आचमन कर तीर पर जाय नीर में पैठ डुबकी ले पूजा तर्पण, जप, ध्यान कर, फिर डुबकी मार आँख खोल जल में देखैं तो वहाँ रथ समेत श्रीकृष्ण दृष्टि आये।

चान सके। इस भाँति स्तुति कर अक्रूर ने प्रभु के चरण का ध्यान धर कहा—कृपानाथ! मुझे अपनी शरण में रक्खो।

मथुरापुरी-प्रवेश

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! जब श्रीकृष्णचन्द्र ने नट माया की भाँति जल में अनेक रूप दिखाय हर लिये, तब अक्रूर जी ने नीर से निकल तीर पर आ हरि को प्रणाम किया। तिस काल नन्दलाल ने अक्रूर से पूँछा कि काका शीत समय जल के बीच इतनी देर क्यों लगी? हमें यह अति चिन्ता थी तुम्हारी, कि चचा ने किस लिए बाट चलन की सुधि बिसारी, क्या कुछ अचरज तो जाकर नहीं देखा, यह समझाय के कहो जो हमारे मन की दुविधा जाय।

चौ०—सुनि अक्रूर कहे जोरे हाथ। तुम सब जानत हो ब्रजनाथ॥
भली दरश दीनो जल माहीं। कृष्ण चरित को अचरज नाहीं॥
मोहिं भरोसो भयो तिहारो। बेग नाथ मथुरा पग धारो॥

अब यहाँ विलम्ब न करिये शीघ्र चल कार्य कीजे। इतनी बात के सुनत ही हरि झट रथ पर बैठ अक्रूर को साथ ले चल खडे हुए, और नन्द आदि जो सब गोप ग्वाल आगे गये थे उन्होंने जाय मथुरा के बाहर डेरे किए। और कृष्ण बलदेव की बाट देख २ अति चिन्ता कर आपस में कहने लगे, इतनी अबेर न्हाते क्यों लगी और किस लिए अब तक नहीं आए हरि? कि इस बीच चले २ आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र जाय मिले। उस समय हाथ जोड शिर झुकाय विनती कर अक्रूर जी बोले कि ब्रजराज अब

ये मेरा घर पवित्र कीजै और अपने भक्तों को दर्श दिखाय सुख दीजै, इतनी बात सुनते ही हरि ने अक्रूर से कहा —

चौ०—पहिले सोध कंस को लेहु। तब आपनो दिखाओ गेहु॥
सब की बिनती कहो जु जाय। सुनि अक्रूर चले शिर नाय॥

चले २ बिननी एक पर में रथ से उतर कर वहाँ पहुँचे जहाँ कंस सभा किए बैठा था। इनको देखते ही सिंहासन से उठ नीचे आय अति हित कर मिला, और बड़े आदर मान से हाथ पकड़ ले जाय सिंहासन पर अपने पास बैठाय इनकी कुशल क्षेम पूँछ बोला, जहाँ गए थे वहाँ की बात कहो।

चौ०—सुन अक्रूर कह्यो समझाय। ब्रजकी महिमा कही न जाय॥
कहा नन्द की करौं बडाइ। बात तुम्हारी शीश चढाई॥
राम कृष्ण दोऊ हैं आए। भेंट सबै ब्रजवासी लाए॥
डेरा कियो नदी के तीर। उतरे गाडा भारी भीर॥

यह सुन कंस प्रसन्न हो बोला—अक्रूर जी तुमने आज हमारा बडा काज किया जो रामकृष्ण को ले आए, अब घर जाय विश्राम करो।

इतनी कथा कह शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! कंस की आज्ञा पाय अक्रूर जी तो अपने घर गए, और वह सोच विचार करने लगा। और जहाँ नन्द उपनन्द बैठे थे, तहाँ उनसे हलधर और गोविन्द ने पूँछा, जो हम आप की आज्ञा पावें तो नगर देख आवें। यह सुन पहिले तो नन्दराय जी ने कुछ खाने को मिठाइ निकाल दी, उन दोनो भाइयों ने मिल कर खाय ली। पीछे बोले अच्छा जाओ, देख आओ, पर विलम्ब मत कीजो।

इतना वचन नन्द महर के मुख से निकलते ही आनन्द कर दोनों भाई अपने ग्वालबाल सखाओं को साथ ले नगर देखने चले। आगे बढ़ देखे तो नगर के बाहर चारों ओर बन उपबन फूल फल रहे हैं, तिन पर पक्षी बैठे अनेक अनेक भाँति की मन भावन बोलियाँ बोलते हैं। और बड़े २ सरोवर निर्मल जल से भरे हैं, उनमें कमल खिले हुए जिन पर भौंरों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे, और तीर में हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे, शीतल सुगन्ध सनी मन्द पवन बह रही, और बड़ी बड़ी बाड़ियों की बाड़ा पर पनबाड़ियाँ लगी हुईं, बीच बीच वर्ण वर्ण की फूलों की क्यारियाँ कोसों तक फूली हुईं, ठौर २ इन्दारों बावड़ियों पर रहट हरोहें चल रहे, माली मीठे २ स्वरों से गाय २ जल सींच रहे हैं।

यह शोभा बन उपबन की निरख हर्षे प्रभु सब समेत मथुरा-पुरी में पैठे। वह पुरी कैसी है कि जिसके चारों ओर ताँबे की कोट और पक्की चुआँन चौड़ी खाई, स्फटिक के चार फाटक तिनमें अष्टधाती किवाड़ कञ्चनखचित लगे हुए और नगर में वर्ण २ के रात, पीते, हरे, धौले, पचखने, सतखने, मन्दिर ऊँचे ऐसे कि घटा से बातें कर रहे हैं। जिनके सोने के कलश कलशियों की ज्योति बिजली सी चमक रही, ध्वजा पताका फहराय रही, जाली झरोखों मोखों से धूप की सुगन्ध आय रही। द्वार २ पर केले के खम्भ और सुवर्ण के कलश सपल्लव धरे हुए, तोरण वन्दनवार बँधी हुई, घर २ बाजन बाज रहे और एक ओर भाँति २ के मणिमय कञ्चन के मन्दिर राजा के न्यारे ही जगमगाय रहे।

तिनकी शोभा कुछ बरणी नहीं जाती ऐसी जो सुन्दर सुहावनी मथुरापुरी, तिसे श्रीकृष्ण बलदेव ग्वालबालों को साथ लिये देखने चले।

दो०—परी धूम मथुरा नगर, आवत नन्द कुमार।
सुन धाये पुर लोग सब, गृह को काज बिसार॥

चौ०—और जो मथुरा की सुन्दरी। सुनत कान अति आतुर खरी॥
कहैं परस्पर बचन उचारी। आवत हैं बलभद्र मुरारी॥
तिन्हें अक्रूर गये हैं लैन। चलहु सखी अब देखिय नैन॥
कोऊ खात न्हात न भजे। गुहत शीश कोऊ उठि तजे॥
अपनी सुधि बुधि को बिसरावें। उलटे भूषण बसन बनावें॥
जैसे ही तैसे उठि धाई। कृष्ण दरश दरसन को आई॥

सो०—लाज कान डर डार, कोऊ खिरकिन कोउ अटन।
कोउ खडी दुआर, कोउ दौरी गलियन फिरत॥
ऐसे जहाँ तहाँ खड़ि नारी। प्रभुहि बतावें बाँह पसारी॥
नीरा बरन गोरे बलराम। पीताम्बर ओढ़े घनश्याम॥
ये भानजे कंस के दोऊ। इनत असुर बच्यो नहिं काऊ॥
सुनत रही पुरषारथ जिनको। दरशे रूप नयन भरि तिनको॥
पूरब जन्म सुकृत कछु कीनो। सो विधि पद दर्शन फल दीनो॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—महाराज! इसी रीति से सब पुरवासी क्या स्त्री क्या पुरुष अनेक २ प्रकार की बातें कह २ दर्शन कर मग्न होते थे। और जिस हाट बाट चौहटे में हो सब समेत कृष्ण बलराम निकलते थे, वहीं अपने कोठा पर खड़े इन पर चोवा चन्दन छिड़क २ आनन्द से फूल बर्षाते थे।



और वे नगर की शोभा देख २ ग्वालवालो से यो कहते जाते थे, भैया! कोई भूलियो मत और जो कोई भूलै तो पिछले डेरो पर जाइयो। इसमे कितनी एक दूर जाय वे देखते क्या हैं कि कंस के धोबी धोये कपडो की लादियाँ लादे पोटे मोट लिये, मद पिये, रंग राते, कंस यश गाते, नगर के बाहर से चले आते हैं। उन्हे देख कृष्णचन्द्र ने बलदेव जी से कहा कि—भैया! इनके सब चीर छीन लो और आप लीजिये पहिर ग्वालबालों को पहिराय बचे सो लुटाय दीजिये। भाई को यो सुनाय सब समेत धोबियो के पास जाय हरि बोले —

चौ०-हमको उज्ज्वल कपडा देहु। राजहिं मिलि आवैं फिर लेहु॥
जो पहिरावनि नृप सो पैहैं। तामें ते कुछ तुमको दैहैं॥

इतनी बात के सुनते ही उनमे से जो बडा धोबी था सो हँस कर कहने लगा —

सो०-राखैं खरी बनाय, ह्वै आवो नृप द्वार लौं।
तब लीजो पट आय, जो चाहो सो दीजियो॥

चौपाई

बन २ फिरत चरावत गैया। जात अहीर कामरी उढैया॥
नट को भेष बनाये आये। नृप अम्बर पहिरन मन भाये॥
जुरि के चले नृपति के पास। पहिरावन लेवे की आस॥

यह बात धोबी की सुनकर हरि ने फिर मुसकराय कहा—हम तो सूधी चाल से माँगते हैं, तुम उलटी क्यो समझते हो। कपडे देन से कछ तुम्हारा न बिगडेगा वरन् यश लाभ होगा। यह वचन सु[illegible]नाय कर बोला—राजा के बागे पहिरने

देखो, अरे आग से जा, नहीं अभी मार डालता हूँ। इतनी बात के सुनते ही क्रोध कर श्रीकृष्णचन्द्र ने तिरछा कर एक हाथ मारा कि उसका सिर भुट्टा सा उड गया। तब जितने उसके साथी और टहलुए थे, सबके सब पोटें मोटें लादियाँ छोड अपना जीव ले भागे और कंस के पास जा पुकारे। वहाँ श्रीकृष्ण जी ने सब कपडे ले लिये, और आप पहिन भाइ को पहिनाय ग्वालबालों को बाँट बचे सो लुटाय दिये जिस समय ग्वालबाल अति प्रसन्न हो २ लगे उलट पुलटे वस्त्र पहिरने।

दो०–कटि कस पग पहिरे भगा, सूथन मेले बाँह।
वसन भेद जानें नहीं, हँसत कृष्ण मन माँह॥

जो वहाँ से आगे बढ़े तो एक सूची ने आय दण्डवत् कर खडे होय, कर जोड के कहा—महाराज! मैं कहने को तो कंस का सेवक कहलाता हूँ, पर मन से सदा आप ही का गुण गाता हूँ, दया कर कहो तो बागे पहराऊँ जिससे तुम्हारा दास कहाऊँ।

इतनी बात उसके मुख से निकलते ही अन्तर्यामी श्रीकृष्ण ने उसे अपना भक्त जान निकट बुलाय के कहा, तू भले समय आया, अच्छा पहराय दे। तब तो उसने भटपट ही खोल उधेड कतर छाँट सी कर ठीक ठाक बनाय चुन २ रामकृष्ण समेत सब को बागे पहिराय दिये। उस काल नन्दलाल उसे भक्ति दे साथ ले आगे चले।

चौ०–तहाँ सुदामा माली आयो, आदर कर अपने घर लायो॥
सब ही को माला पहिराई, माली के घर भई बधाई॥

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—महाराज! भोर ही जब नन्द उपनन्द सब बड़े २ गोप रंगभूमि की सभा में गये, तब श्रीकृष्णचन्द्र जी ने बलदेव जी से कहा कि भाई! सब गोप आय गये, अब विलम्ब न करिये, शीघ्र ग्वालबाल सखाओं को साथ ले रंगभूमि देखने चलिये।

इतनी बात के सुनत ही बलराम जी उठ खड़े हुए, और सब ग्वालबाल सखाओं से कहा कि भाइयो! चलो, रंगभूमि की रचना देख आवें। यह वचन सुनते ही तुरन्त सब साथ हो लिये, निदान श्रीकृष्ण बलराम नटवर भेष किये, ग्वालबाल सखाओं को साथ लिये, चले २ रंगभूमि की पौर पर आय खड़े हुए। जहाँ दश सहस्र हाथियों का बल वाला गज कुवलयापीड खड़ा झूमता था।

चौ०—देख मतंग द्वार मतवारो। गजपालहिं बलराम पुकारो॥
सुनो महावत बात हमारी। लेहु द्वार तें गज तुम टारी॥
जान देहु हम को नृप पास। नातर ह्वै है गज को नास॥
कहे देत नहिं दोष हमारो। मत जाने हरि को तू बारो॥

ये त्रिभुवनपति हैं, दुष्टों को मार भूमि का भार उतारने को आये हैं, यह सुन महावत क्रोध कर बोला—मैं जानता हूँ, गौ चराय ये त्रिभुवनपति भये हैं, इसी से यहाँ आय बड़े शूर की भाँति अड़े खड़े हैं। धनुष का तोडना न समझियो, मेरा हाथी दस सहस्र हाथियों का बल रखता है जब तक इससे न लड़ोगे

तब तक भीतर न जाने पाओगे, तुम न तो बहुत बली मारे हैं, पर आज इसके हाथ से बचोगे तब मैं जानूँगा कि तुम बड़े बली हो।

दो०—तबहिं कोपि हलधर कह्यो, सुन रे मूढ़ कुजात।
गज समेत पटकों अबहिं, मुख सँभार कहु बात॥

सो०—नेकु न लगि है बार, हाथी मरि जैहै अबहिं।
तोसों कहत पुकार, अजहूँ मान मोरो कह्यो॥

इतनी बात के सुनते ही झुँझला कर गजपाल ने गज पेला ज्यों वह बलदेव जी पर टूटा, त्यों इन्होंने हाथ घुमाया एक थपेड़ा ऐसा मारा कि वह सूँड सिकोड़ चिंघार मार पीछे हटा। यह चरित्र देख कंस के बड़े २ योद्धा जो खड़े देखते थे सो अपने जी में यों हार मान मन ही मन कहने लगे कि इन महा बलवानों से कौन जीत सकेगा, और महावत भी हाथी को पीछे हटा जान अति भय मान जी में विचार करने लगा कि जो यह बालक न मारे जायँ तो कंस भी मुझे जीता न छोड़ेगा। यों सोच समझ उसने फिर अंकुश मार हाथी को तत्ता किया और इन दोनों भाइयों पर हूल दिया, उसने आन ही सूँड में हरि को पटक पछाड़ खुनसाय ज्यों दाँतों से दबाया, त्यों प्रभु सूक्ष्म शरीर बनाय दाँतों के बीच बच रहे।

दो०—डरपि उठे तिहि काल सब, सुर मुनि पुर नर नारि।
दुहूँ दशन बिच है कढ़े, बच निकरि प्रभु दै तारि॥

सो०—उठे गजहिं के साथ, बहुरि ख्याल ह्वै हाँक दै।
तुरतहि भये सनाथ, देखि चरित सब स्याम के॥

चौपाई

हाँक सुनत अति कोप बढ़ायो। झटकि सूँड़ बहुरो गज धायो॥
रहे उदर तर दबकि मुरारी। गयो जान गज रह्यो निहारी॥
पाछे प्रकट फेर हरि टेरो। बलदाऊ आगे तें घेरो॥
लागे गजहिं खिलावन दोऊ। औचक रहे देख सब कोऊ॥

महाराज! उसे कभी बलराम सूँड़ पकड़ खेंचते थे, कभी श्याम पूँछ पकड़, और जब वह इन्हें पकड़ने को आता था, तब ये अलग हो जाते थे, कितनी एक बेर ताईं उससे ऐसे खेलते रहे जैसे बछड़ों के साथ बालपन में खेलते थे। निदान हरि ने पूँछ पकड़ फिराय उसे दे पटका और मार घूँसों के मार डाला, दाँत उखाड़ लिये, तब उसके मुँह से लोहू नदी की भाँति बह निकला। हाथी के मरते ही महावत ललकार कर आया प्रभु ने उसे भी हाथी के पाँव तले झट मार गिराया, और हँसते २ दोनों भाई नटवर भेष किये एक २ दाँत हाथी का हाथ में लिये रङ्गभूमि के बीच जा खड़े हुये। उस काल नन्दलाल को जिन २ ने जिस २ भाव से देखा, उस २ को उसी २ भाव से दृष्टि आये। मल्लों ने मल्ल माना, राजाओं ने राजा जाना, देवताओं ने अपना प्रभु बूझा, ग्वालबालों ने सखा, नन्द उपनन्द ने बालक समझा, और पुर की युवतियों ने रूपनिधान, और कंसादिक राक्षसों ने काल समान देखा। महाराज! इनको निहारते ही कंस अति भयमान हो पुकारा, अरे मल्लो! इन्हें पछाड़ मारो, मेरे आगे से टालो।

इतनी बात ज्यों कंस के मुँह से निकली त्यों सब मल्ल गुरु

सुन चले मग लिये, वर्षा ने भय किये, ताल ठोक मिड़न को श्रीकृष्ण बलराम के चारों ओर घिर आये। जैसे वे आये तैसे ये भी सँभल खड़े हुये, तब उनमें से इनकी ओर देख चतुराई कर चाणूर बोला—सुनो आज हमारे राजा कुछ उदास हैं, इससे जी बहलाने को तुम्हारा युद्ध देखा चाहते हैं, क्योंकि तुमने वन में यह सब विद्या सीखी है और किसी बात का मन में सोच न कीजै, हमारे साथ मल्ल युद्ध कर अपने राजा को सुख दीजै। श्रीकृष्ण बोले—राजा जी ने बड़ी दया कर हम बुलाया है। आज हमसे क्या सरेगा इनका काज, तुम अति बली गुणवान, हम बालक अजान, तुमसे हाथ कैसे मिलावें। कहा है ब्याह बैर और प्रीति समान से कीजै, पर राजा जी से कुछ हमारा वश नहीं चलता, इससे तुम्हारा कहा मानते हैं। हमें बचा लीजो, बल कर पटक न दीजो। अब हमें तुम्हें उचित है जिसमें धर्म रहै सो कीजिये, और मिल कर अपने राजा को सुख दीजिये।

चौ०—तब चाणूर कहै भय खाय। तुम्हारी गति जानी नहिं जाय॥
तुम बालक मानुष नहिं दोऊ। कीन्हें कपट बली हौ कोऊ॥
खेलत धनुष खण्ड द्वै करे। मारे तुरत कुवलया तरे॥
तुम से लरे हानि नहिं होय। या बातें जान सब कोय॥

———

कंसासुर-वध

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि, पृथ्वीनाथ! कितनी एक बातें कर ताल ठोक चाणूर तो श्रीकृष्ण के सोहीं हुआ। और मुष्टिक बलराम जी से भिड़ा, उनका इनसे मल्ल युद्ध होने लगा।

दो०—शिर सों शिर भुज सों भुजा, दृष्टि दृष्टि सों जोरि।
चरण चरण गहि झपटि कै, लपटन झपट झकोरि ॥

उस काल सब लोग इन्हें उन्हें देख देख आपस में कहने लगे कि, भाइयो! इस सभा में अति अनीति होती है। देखो यहाँ ये बालक रूपनिधान, कहाँ हैं मतवाले मल्ल वज्रसमान, जो बरजें तो कंस रिसाय, न बरजें तो धर्म जाय, इससे अब यहाँ रहना उचित नहीं क्योंकि हमारा कुछ वश नहीं चलता।

महाराज! इधर तो ये सब लोग यों कहते थे, और उधर श्रीकृष्ण बलराम मल्लों से मल्ल युद्ध करते थे। निदान इन दोनों भाइयों ने उन दोनों मल्लों को पछाड़ मारा, उनके मरते ही सब मल्ल आय टूटे प्रभु ने पल भर में तिन्हें भी मार गिराया। तिस समय हरिभक्त तो प्रसन्न हो बाजन बजाय बजाय जय जयकार करने लगे, और देवता आकाश में अपने विमानों में बैठ कृष्ण-यश गाय गाय फूल बर्षाने लगे, और कंस अति दुख पाय व्याकुल हो रिसाय अपने लोगों से कहने लगा—अरे बाजे बाजे! बाजे बजाते हो, तुम्हें क्या कृष्ण की जीत भाती है?

यों कह बोला ये दोनों बालक बड़े चञ्चल हैं, इन्हें पकड़ बाँध सभा से बाहर ले जाओ, और देवकी समेत उग्रसेन वसुदेव कपटी को पकड़ लाओ। पहिले उन्हें मार पीछे इन दोनों को भी मार डालो। इतना वचन कंस के मुख से निकलते ही भक्तों के हितकारी मुरारी सब असुरों को क्षण भर में मार, उछल के वहाँ जा चढ़े, जहाँ अति ऊँचे मञ्चपर झिलम पहने टोप दिये, फरी खाँड़ा लिये बड़े अभिमान से कंस बैठा था। वह इनको काल

समान निकट देखते ही भय खाय उठ खड़ा हुआ, और लगा थर २ काँपने।

मन से तो चाहा कि भागूँ पर मारे लाज के भाग न सका, फेरी खाँडा सँभाल लगा चोट करने। उस काल नन्दलाल अपनी घात लगाये उसकी चोट बचाते थे। सुर नर मुनि और गंधर्व यह महायुद्ध देख २ भयमान हो या पुकारते थे, हे नाथ! हे नाथ! इस दुष्ट को वेग मारो। कितनी एक बेर तक मल्ल पर युद्ध रहा, निदान प्रभु ने सब को दुखित जान उसके केश पकड़ मञ्च से नीचे पटका, और ऊपर से आप भी कूद कि उसका जीव घट से निकल सटका। तब सब सभा के लोग पुकार श्रीकृष्णचन्द्र ने कंस को मारा, यह शब्द सुन सुर नर मुनि सब को अति आनन्द हुआ।

दो०—करि स्तुति पुनि हरष सब, बरष सुमन सर बृन्द।
मुदित बजावत दुन्दभी, कहि जय जय नन्दनन्द॥

सो०—मथुरा पुर नर नारि, अति प्रफुल्ल सब को हियो।
मनहुँ कुमुद बन चारि, निरमित हरि मुख शशि निरखि॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि धर्मावतार! कंस के मरते ही जो अति बलवान आठ भाई उसके थे सो लड़ने को चढ़ आये। प्रभु ने उन्हें भी मार गिराया। जब हरि ने देखा कि अब यहाँ राक्षस कोई नहीं रहा। तब कंस की लोथ को घसीट यमुना तीर पर ले आये और दोनों भाइयों ने बैठ विश्राम किया। तिस दिन से उस ठौर का नाम विश्राम घाट हुआ।

आगे कंस का मरना सुन कंस की रानियाँ पटरानियाँ समेत अति व्याकुल हो रोती पीटती वहाँ आईं जहाँ यमुना के तीर दोनों वीर मृतक लिये बैठे थे, और लगीं अपने पति का मुख निरख निरख सुख सुमिर गुण गाय गाय व्याकुल हो हो पछाड़ खाय खाय गिरने, कि इस बीच करुणानिधान कान्ह करुणा कर उनके निकट जा बोले —

चौ०—मामी सुनहु शोक नहिं कीजै। माता जी को पानी दीजै॥
सदा न कोउ जीवत रहै। झूठो सो जो अपनो कहै॥
मात पिता सुत बन्धु न कोई। जन्म मरण फिर फिर होई॥
जौलौं जो सम्बन्ध रहै। तौलौं लौं नाता सुत कहै।

महाराज! जब श्रीकृष्ण ने रानियों को समझाया, तब वे वहाँ से उठ धीर्य धर यमुना तीर पर आ पति को पानी दिया औ... आप प्रभु ने अपने हाथ से कंस को आग दे उसकी गति की।

शंखासुर-वध

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे राजा! रानियाँ तो पटरानियाँ समेत वहाँ से नहाय धोय रोय राजमन्दिर को गईं और श्रीकृष्ण बलराम वसुदेव देवकी के पास आये, आते ही हाथ पाँव की हथकड़ियाँ बेड़ियाँ काट, दण्डवत् कर हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हुए। जिस समय प्रभु का रूप देख वसुदेव देवकी को ज्ञान हुआ तो उन्होंने अपने जी में निश्चय कर जाना कि ये दोनों विधाता हैं, असुरों का मार भूमि का भार उतारने को संसार में अवतार ले आये हैं।

जब वसुदेव देवकी ने यों जाना, तब अन्तर्यामी हरि ने अपनी माया फैलाय दी। उसने उनकी यह मति हरि ली। फिर तो उन्होंने इन्हें पुत्र कर समझा कि इतने में श्रीकृष्णचन्द्र अति दीनता कर बोले —

चौ०—तुम यह दिवस लह्यो दुख भारी। कबहु रहे अति सुरति हमारी॥

इसमें हमारा कुछ अपराध नहीं क्योंकि जब से आप हमें गोकुल में नंद के यहाँ धर आये तब से परवश थे, हमारा वश न था, पर मन में सदा यह आता था कि जिनने गर्भ में दश महीने रख जन्म लिया, उन्हें कभी कुछ सुख न दिया, न हमहीं ने माता पिता का सुख देखा वृथा जन्म पराये यहाँ खोया। उन्होंने हमारे लिये अति विपत्ति सही हम से कुछ उनकी सेवा न भई, संसार में सामर्थी वेई हैं जो माँ बाप की सेवा करते हैं, हम उनके ऋणी रहे टहल न कर सके।

पृथ्वीनाथ! जब श्रीकृष्ण जी ने अपने मन का खेद यों कह सुनाया, तब अति आनंद कर उन दोनों ने इन दोनों को हितकर कण्ठ लगाया, और सुख मान पिछला दुःख सब गँवाया। फिर माता पिता को सुख दे दोनों भाई वहाँ से चले २ उग्रसेन के पास आय, और हाथ जोड़ कर बोले —

चौ०—नाना जी अब कीजे राज। शुभ नक्षत्र नीको दिन आज॥

इतना हरि के मुख से निकलते ही राजा उग्रसेन उठ कर आ श्रीकृष्णचन्द्र के पाँओं पर गिर कर कहने लगे कि कृपानाथ! मेरी विनती सुन लीजिये। जैसे आपने सब असुरों समेत कंस महादुष्ट को मार भक्तों को सुख दिया, तैसे ही सिंहासन पै बैठ अब

मधुपुरी का राज्य कर प्रजा पालन कीजिये। प्रभु बोले--महाराज! यदुवंशियों को राज्य का अधिकार नहीं, इस बात को सब कोई जानता है। जब राजा ययाति बूढ़े हुए तब अपने पुत्र यदु को उन्होंने बुलाकर कहा--अपनी तरुण अवस्था मुझे दे, और मेरा बुढ़ापा तू ले। यह सुन उसने जी में विचारा कि जो मैं पिता को युवा अवस्था दूँगा तो यह तरुण हो भोग करेगा, इससे मुझे पाप होगा, इसमें नहीं करना ही भला है। यों सोच समझ के उसने कहा कि पिता यह तो मुझसे न हो सकेगा। इतनी बात के सुनते ही राजा ययाति ने क्रोध कर शाप दिया कि जा तेरे वंश में राजा कोई न होगा।

इस बीच पुरु नाम उसका छोटा बेटा सन्मुख आ हाथ जोड़ बोला--पिता! अपनी वृद्ध अवस्था मुझे दो और मेरी तरुणाई तुम लो। यह देह किसी काम की नहीं, जो तुम्हारे काम आवे तो इससे उत्तम क्या है। जब पुरु ने यों कहा तब राजा ययाति प्रसन्न हो अपनी वृद्ध अवस्था दे उसकी युवा अवस्था ले बोले--कि तेरे कुल में राजगद्दी रहेगी, इससे नाना जी हम यदुवंशी हैं, हमें राज्य करना उचित नहीं --

सो०--करो बैठ तुम राज, दूर करो सन्देह सब।
हम करिहैं सब काज, जो आयसु देहौ हमें॥

चौपाई

जो न मानि है आन तिहारी। ताहि दंड करिहैं हम भारी॥
और कछू चित शोच न कीजै। नीति सहित परजहि सुख दीजै॥
यादव जिते कंस की त्रास। नगर छोड़ि के गये प्रवास॥

तिनको अब करि खोज मँगाओ। सुख दै मथुरा माँझ बसाओ॥
विप्र धेनु सुर पूजन कीजै। इनकी रचा में चित दीजै॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि धर्मावतार! महाराजाधिराज भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द्र ने उग्रसेन को अपना भक्त जान ऐसे समझाय सिंहासन पर बिठाय राजतिलक दिया, और छत्र फिराय दोनो भाइयों ने अपने हाथों चमर किया।

उस काल सब नगर के वासी अति आनन्द में मग्न हो धन्य २ कहने लगे, और दवना फूल बर्षाने। महाराज! यों उग्रसेन को राजपाट पर बिठाय दोनो भाई बहुत से वस्त्र आभूषण अपने साथ लिवाय वहाँ से चले २ नन्दराय जी के पास आये, और सन्मुख हाथ जोड खडे हो अति बिनती कर बोले--हम तुम्हारी क्या बडाई करें, जो सहस्र जीभ होयँ तो भी तुम्हारे गुणों का बखान हम से न हो सके। तुमने हमें अति प्रीति कर अपने पुत्र की भाँति पाला सब लाड प्यार किया, और यशोदा मैया भी बडा स्नेह करती और अपना हित हम ही पर रखती सदा निज पुत्र समान जानती, कभी मन से भी हमें पराया कर न मानती।

ऐसे कह फिर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे पिता! तुम यह बात सुन कर कुछ बुरा मत मानो। हम अपने मन की बात कहते हैं कि माता पिता तो तुम्हें ही कहेंगे, पर अब कुछ दिन मथुरा में रहेंगे, अपने जाति भाइयों को देख यदुकुल की उत्पत्ति सुनेंगे, और माता पिता से मिल उन्हें सुख देंगे, क्योंकि उन्हों ने हमारे लिये बडा दुःख सहा है, जो हमें तुम्हारे यहाँ न पहुँचा आते तो वे दुख

न पाते। इतना कह वस्त्र आभूषण नन्द महर के आगे धर प्रभु ने निर्मोही हो कहा —

चौ॰—मैया मों पालागन कहियो। हम पै प्रेम करे तुम रहियो।

इतनी बात श्रीकृष्ण के मुँह से निकलते ही नन्दराय तो अति उदास हो लगे लम्बी साँसें लेने और ग्वालबाल विचार कर मन ही मन में यों कहने लगे कि यह क्या अचम्भे की बात कहते हैं इस से ऐसा समझ में आता है कि अब ये कपट कर जाया चाहते हैं। नहीं तो ऐसे निठुर वचन न कहते, महाराज! निदान उनमें से श्रीदामा नाम सखा बोला—भैया! कन्हैया अब मथुरा में तेरा क्या काम है? जो निठुराई कर पिता को छोड़ यहाँ रहत है। भला किया कंस को मारा, सब काम सम्हारा, अब नन्द के साथ हो लीजिये, वृन्दावन में चल कर राज्य कीजिये। यहाँ के राज्य का मन में मत ललचाओ, वहाँ का सा सुख न पाओगे।

सुनो, राज्य देख कर मूर्ख भूलते हैं और हाथी [illegible] देख फूलते हैं। तुम वृन्दावन छोड़ कहीं मत रहो, [illegible] ऋतु रहती है सघन वन और यमुना की शोभा [illegible] रती। भाइ, जो वह सुख छोड़ हमारा कहना [illegible] माया तज यहाँ रहोगे तो इसमें तुम्हारी [illegible] की सेवा करोगे, और रात दिन [illegible] राज्य दिया उसी के आधीन होना [illegible] जायगा। इस से अब उत्तम यही है कि [illegible]

चौपाई

ब्रजजन नदी विहार विचारो। गायन को मन त न विसारो॥
नहीं छाँडिहैं हम ब्रजनाथ। चलिहैं सबै तिहारे साथ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! ऐसे कितनी एक बातें कह सब जीम सखा श्रीकृष्ण बल राम जी के साथ रहे, और उन्होंने नन्दराय से बुझा कर कहा कि आप सब को ले निस्सदेह आगे चढ़िये पीछे से हम भी उन्हें साथ लिये चले आते हैं। इतनी बात के सुनते ही,

सो०— व्याकुल सबै अहीर, मानहुँ पन्नग के डसे।
हरि मुख लखत अधीर, ठाढ़े काढ़े चित्र से॥

उस समय बलदेव जी नन्दराय को अति दुखित देख समझान लगे कि, पिता तुम! इतना दुख क्यों पाते हो थोड़े एक दिन में यहाँ का काज कर हम भी आते हैं, आपको आगे इसलिये विदा करते हैं कि माता हमारी अकेली व्याकुलहोती होयेंगी, तुम्हारे गये से उन्हें कुछ धीर्य होगा। नद जी बोले कि बेटा, एकबार तुम मेरे साथ चलो फिर मिल कर चले आइयो।

दो०—ऐसे कहि अति विकल हो, रह नन्द गहि पाय।
भई क्षीण शुनि मद मति, नयनन जलन नहाय॥

महाराज! जब माया-रहित श्रीकृष्णचन्द्र जी ने ग्वालबाल समत नंदराय को महा व्याकुल देखा तो मन मे विचारा कि ये मुझ से बिछुड़ेंगे तो जीते न बचेंगे। त्यो ही उन्होंने अपनी उस माया को छोड़ा, जिसने सारे ससार को भुला रक्खा है। उसने आते ही नद जी को सब समेत अज्ञान किया। फिर बोले कि—

पिता ! तुम इतना क्यों पछताते हो, पहिले यही विचारो कि मथुरा और वृन्दावन में अन्तर क्या है। तुम से हम कहीं दूर तो नहीं जाते जो इतना दुख पाते हो, वृन्दावन के लोग दुखी होंग इसलिये तुम्हें आगे भेजते हैं।

जब ऐसे प्रभु ने नन्द महर को समझाया, तब वे धीर्य धर हाथ जोड़ बोले—प्रभु जो तुम्हारे ही जी में यों आया तो मेरा क्या वश है ? जाता हूँ तुम्हारा कहा टाल नहीं सक्ता। इतना वचन नन्द जी के मुख से सुनते ही हरि ने ग्वालबालों समेत नन्दराय को तो वृन्दावन बिदा किया, और आप कई सखाओं समेत दोनों भाई मथुरा में रहे, उस काल नन्द सहित गोपग्वाल चले।

चौ०—चले सकल मन सोचत भारी। हारे सर्वस मनहु जुवारी॥
काहू सुधि काहू सुधि नाहीं। लटपट चरण परत मग माहीं॥
जात वृन्दावन देखत मधुबन। विरह बिथा बाढ़ी व्याकुल तन॥

इस रीति से ज्यों त्यों कर वृन्दावन पहुँचे। इनका आना सुनत ही यशोदा रानी अति अकुलाय कर दौड़ी आई, और रामकृष्ण को न देख महा व्याकुल हो नन्द जी से कहने लगी —

चौ०—अहो कन्त सुत कहाँ गँवाये। पट आभूषण लीनो आये।
कचन फेंक काँच घर राख्यो। अमृत छाँड़ि मूढ़ विष चाख्यो॥
पारस पाये अंध ज्यों डारे। फिर गुण सुने कपारहिं फारे॥

ऐसे तुमने भी पुत्र गँवाये, और वसन आभूषण उनके पलटे ले आये अब उन बिन धन क्या करोगे ? हे मूर्ख कन्त ! जिनके ... भये छाती फटे, कहो उन बिन दिन कैसे

जब उन्होंने तुम से बिछुड़ने को कहा—तब तुम्हारा हिया कैसा रहा।

इतनी बात सुन नन्द जी को बड़ा दुःख पाया और नीचा शिर कर यह वचन सुनाया कि सत्य है, ये वस्त्र अलंकार श्रीकृष्ण ने दिये, पर मुझे यह सुधि नहीं कि किसने लिये, और मैं कृष्ण की बात कहूँगा, सुनकर तू भी दुःख पावेगी।

चौपाई

कंस मार मोपै फिर आय। प्रीति हरण कहि वचन सुनाये॥
वसुदेव के पुत्र व भये। कर मनुहार हँकारी गये॥
हाँ तब महरि अचम्भे रह्यो। पोषण भरण हमारा कह्यो॥
अब न महरि हरि सो सुन कहियो।ईश्वर जानि भजन करि रहियो।

उसे तो हमने पहिले ही नारायण जाना था, पर माया वश पुत्र कर माना। महाराज! जब नन्दराय जी ने सब बातें श्रीकृष्ण की कहीं यशोदा ने सनी, तिस समय माया वश हो यशोदा रानी कभी तो प्रभु को अपना पुत्र जान मन ही मन पछताय व्याकुल हो २ रोती थीं। और कभी ज्ञान कर ईश्वर जान उनका ध्यान धर गुण गाय गाय मन का खेद खोती थी। और इसी रीति से सब वृन्दाबनवासी क्या स्त्री क्या पुरुष हरि के प्रेम रंगराते अनेक अनेक प्रकार की बात करते थे, सो मेरी सामर्थ्य नहीं जो मैं वर्णन करूँ।

ऊधो-वृन्दावन-गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि—पृथ्वीनाथ! श्रीकृष्णचन्द्र ने वृन्दावन की सुरति करी सो मैं सब लीला कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो, कि एक दिन हरि ने बलराम जी से कहा कि, भाई! सब वृन्दावन-वासी हमारी सुरत कर अति दुःख पाते होंगे। क्योंकि जो हमने उनसे अवधि की थी सो बीत गई। इससे अब उचित है कि किसी को वहाँ भेज दीजे, जो जाकर उनका समाधान कर आवे।

यों भाई से मता कर हरि ने उद्धव को बुलाय के कहा कि, अहो उद्धव! एक तो तुम हमारे बड़े सखा हो, दूजे अति चतुर ज्ञानवान् और धीर, इसलिये हम तुम्हें वृन्दावन भेजा चाहते हैं कि तुम जाकर नन्द यशोदा और गोपियों को ज्ञान दे उनका समाधान कर आयो, और माता रोहिणी को ले आओ। उद्धव जी ने कहा जो आज्ञा।

फिर श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले कि, तुम प्रथम नन्द महर और यशोदा जी को ज्ञान उपजाय उनके मन का मोह मिटाय ऐसे समझाय कर कहियो, जो वे मुझे निकट जान दुःख तजे पुत्रभाव छोड़ ईश्वर मान भजें।

महाराज! ऐसे उद्धव को कह दोनों भाइयों ने मिल एक पाती लिखी, जिसमें नन्द यशोदा समेत गोप ग्वालवालों को तो यथा योग्य दण्डवत प्रणाम आशीर्वाद, और सब ब्रज युवतियों को योग का उपदेश लिख उद्धव के हाथ दी। और कहा कि यह पाती

तुम्हीं पढ सुनाइयो, औसे बने तैसे उन सब सन को समझाय शीघ्र आइयो।

इतना सदेशा कह प्रभु ने निज वस्त्र आभूषण मुकुट पहिराय अपने ही रथ पर बैठाय उद्धव जी को वृन्दावन बिदा किया। वे रथ हाँक कितनी एक बेर में मथुरा से चलते वृन्दावन के निकट जा पहुँचे, तो वहाँ क्या देखते हैं कि सघन कुन्जों के पेड़ों पर भाँति भाँति के पक्षी मन भावन बोलियाँ बोल रहे हैं। और जिधर तिधर धौली पीली भूरी काली गायें घटा सी फिरती हैं, और ठौर ठौर गोपी गोप ग्वालबाल श्री कृष्ण यश गाय रहे हैं।

यह शोभा निरख हर्षते और प्रभु का विहारस्थल जान प्रणाम करते उद्धव जी जो गाँव के गैंडे गये तो किसी दूर से हरि का रथ पहिचान पास आय इनका नाम पूँछा। नन्द महर ने जा कहा कि महाराज! श्रीकृष्ण का भेज किया उन्हीं का रथ लिये कोई उद्धव नाम मथुरा से आया है।

इतनी बात सुनते ही नन्दराय जैसे गोप मण्डली के बीच अथाई पर बैठे थे तैसे ही उठ धाय और तुरन्त उद्धव जी पै निकट आये, राम कृष्ण जी का सगी जान अति हितकर मिले और कुशल क्षेम पूँछ बड़े आदरमान से घर लिवाय ले गये पहले पाँव धुलवाय आसन बैठन को दिया, पीछे षट्रस भोजन बनवा उद्धव जी की पहुनाई की, जब वे रुचि से भोजन कर चुके तब एक सुथरी उज्ज्वल फेनसी सेज बिछवा दी तिस पर पान खाय जाय उन्होंने पौढ कर अति सुख पाया और मार्ग का श्रम गँवाया। कितनी बेर में जो उद्धव जी सो के उठे त्यों नन्द महर उनके पास जा

बैठे और पूछने लगे कि कहो उद्धव जी ! शूरसेन के पुत्र हमारे परम मित्र वसुदेव जी कुटुम्ब सहित आनन्द से हैं, और हम से कैसी प्रीति करते हैं। यों कह फिर बोले —

चौ०–कुशल हमारे सुत की कहो। जिन के सङ्ग सदा तुम रहो॥
कबहूँ व सुधि करत हमारी। उन जिन दुःख पावत हम भारी॥
सबही सों आवन कह गये। बीती अवधि बहुत दिन भये॥

तिन उठ यशोदा कही विनोद माखन निकाल हरि के लिये रक्खी है। उनकी और ब्रजगोपियों की जो उनके प्रेम रंग में रंगी हैं, तिनकी सुरत कभी करते हैं कि नहीं।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि पृथ्वीनाथ ! इसी रीति से समाचार पूछते और श्रीकृष्णचन्द्रकी पूर्व लीला गाते २ नन्दराय जी को प्रेम रस भीज इतना कह प्रभु का ध्यान धर अवाक्य हुए —

चौ०–महाबली कंसादिक मारे। अब हम काहे कृष्ण बिसारे॥

कि इस बीच अति व्याकुल हो सुधि बुधि देह की बिसार मन मारे रोती यशोदा रानी उद्धव जी के निकट आय राम कृष्ण की कुशल पूँछ बोली—कहो उद्धव जी ! हरि हम बिन वहाँ कैसे इतने दिन रहे ? और क्या संदेश भेजा है, कब आय दर्शन देंगे। इतनी बात के सुनते ही पहले तो उद्धव जी ने नन्द यशोदा जी को श्रीकृष्ण बलराम की पाती बाँच सुनाय पीछे समझा कर कहने लगे कि जिनके घर में भगवान् ने जन्म लिया और बाललीला कर सुख दिया, तिनकी महिमा कौन कह सके। तुम बड़े भाग्यवान् हो, ... आदि पुरुष अविनाशी शिव विरञ्चि के कर्ता जिनके

माता न पिता न भाई न बन्धु तिसे तुम अपना पुत्र जान मानते हो और सदा उसी के ध्यान में मन लगाये रहते हो वह तुम से कब दूर रह सकता है। कहा है—

चौ०-सदा समीप प्रेम बश हरी। जिनके हेत देह जिन धारी॥
जाके बैरी मित्र न कोई। ऊँच नीच कोऊ भिन नाई॥
कोइ भक्ति भजन मन धरे। सोई हरि सों मिल अनुसरे॥

जैसे भृङ्गी कीट को ले जाता है, और अपना रूप बनाय देता है और जैसे कमल के फूल में भौंरा मूँद जाता है, भौंरी रात भर उसके ऊपर गूँजती रहती है, उसे छोड और कहीं नहीं जाती, तैसेही जो हरि से हित करता है और उसका ध्यान धरता है, तिसे भी आप सा बना लेते हैं, और सदा उसके पास ही रहते हैं।

यों कह फिर उद्धव बोले कि अब तुम हरि को पुत्र कर मत जानो ईश्वर कर मानो वे अन्तर्यामी भक्त हितकारी प्रभु आय दर्शन दे तुम्हारा मनोरथ पूरा करेंगे तुम किसी बात की चिन्ता न करो।

महाराज! इसी रीति से अनेक २ प्रकार की बातें कहते २ सुनते २ जब सब रात व्यतीत भई और चार घडी पिछली रही, तब नन्दराय जी से उद्धव जी ने कहा—महाराज! अब दधि मथन की विरियाँ हुई, जो आप की आज्ञा होय तो यमुना स्नान कर आऊँ, नन्द महर बोले—बहुत अच्छा। इतना कह वे तो वहाँ बैठे सोच विचार करते रहे, और उद्धव जी झट रथ में बैठ यमुना तीर पर गये, पहिले वस्त्र उतार देह शुद्ध करी, पीछे नीर के निकट जा रज शिर चढाय हाथ जोड कालिंदी की अति स्तुति गाय

आचमन कर जल में पैठ, और नहाय धोय सन्ध्या पूजा तर्पण से निश्चिन्त हो लगे जप करने।

अक्रूर-हस्तिनापुर गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, पृथ्वीनाथ! जब ऐसे श्रीकृष्ण जी ने अक्रूर के मुख से सुना, तब इन्होंने उन्हें पाण्डवों की सुधि लेन को बिदा किया, व रथ पर बैठ चले। कई एक दिन में मथुरा से हस्तिनापुर पहुँचे और रथ से उतर जहाँ राजा दुर्योधन अपनी सभा में सिंहासन पर बैठा था, वहाँ जाय जुहार कर खड़े हुए। इन्हें देखते ही दुर्योधन सभा समेत उठ कर मिला, और अति आदर मान से अपने पास बिठाय इनकी कुशल क्षेम पूँछ बोला —

चौपाई

नीके सूरसेन वसुदेव। नीके हैं मोहन बलदेव॥
उग्रसेन राजा केहि हेत। नाहिन काहू की सुधि लेत॥
पुत्रहि मार करत है राज। तिनहिं न काहू सों है काज॥

ऐसे जब दुर्योधन ने कहा—तब अक्रूर सुन चुप हो रहा, और मन ही मन कहने लगा कि यह पापियों की सभा है, मुझे यहाँ रहना उचित नहीं क्योंकि जो मैं रहूँगा तो यह ऐसी २ अनेक बातें कहेगा सो मुझ से सन सुनी न जायँगी, इस से यहाँ रहना भला नहीं।

यों बिचार अक्रूर जी वहाँ से उठ विदुर को साथ ले पाण्डु के घर गये। तहाँ जाय देखें तो कुन्ती पति के सोच से महा व्याकुल

बिना बैकुण्ठ धाम न जा क्या करूँ बिश्राम ? इतना वचन सुन और राजा के मन का अभिप्राय जान श्रीभक्तहितकारी करुणासिन्धु हरि ने पुरी समेत स्वपच को भी राजा रानी कुँवर के साथ तारा ।

चौपाई

यहाँ हरिश्चन्द्र अमर पद पायो । यहाँ युगन युग यश चलि आयो ॥

महाराज ! यह प्रसंग जरासन्ध को सुनाय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा कि, महाराज ! और सुनिये कि, रन्तिदेव ने ऐसा तप किया कि अड़तालीस दिन बिन पानी रहा और जब जल पीने बैठा तिसी समय कोई प्यासा आया इसने वह नीर आप न पी उस तृषावन्त को पिलाया, उस जलदान से उसने मुक्ति पाई। पुनि राजा बलि ने भूमि दान किया तो पाताल का राज्य लिया और अब तक उसका यश चला जाता है। फिर देखिये कि उद्दालक मुनि छठे महीने अन्न खाते थे एक समय खाती बिरियाँ उसके यहाँ अतिथि आया, उसने अपना भोजन आप न खाया भूँखे को खिलाया और उस क्षुधा ही में मरे। निदान अन्न दान करने से बैकुण्ठ को गये चढ़ कर विमान। पुनि एक समय देवताओं को साथ ले राजा इन्द्र ने जाय दधीचि से कहा कि, महाराज ! हम वृत्रासुर के हाथ से अब बच नहीं सकते जो आप अपनी अस्थि हमें दीजे तो उसके हाथ से बचें नहीं तो बचना कठिन है क्योंकि तुम्हारे हाड से आयुध बिना किसी भाँति न मारा जायगा। महाराज ! इतनी बात के सुनते ही दधीचि ने शरीर गाय से चटवाय जाँघ का हाड निकाल दिया । देवताओं ने ले उस अस्थि का वज्र बनाया और दधीचि ने प्राण गँवाया, [illegible] धाम पाया ।

चौ०—ऐसे दाता भये अपार। तिनको यश गावत संसार॥

राजा! यों कह श्रीकृष्णचन्द्र जी ने जरासन्ध से कहा कि, महाराज! जैसे आगे और युगों में धर्मात्मा दानी राजा हो गये हैं तैसे अब इस काल में तुम हो। ज्यों आगे उन्होंने याचकों की अभिलाषा पूरी की त्यों तुम अब हमारी आशा पुजाओ, कहा है—

दो०—याचक काहू न माँगई, दाता काहु न देय।
गृह सुत सुन्दरि लाभ नहिं, तन धन दे यश लेय॥

इतना वचन प्रभु के मुख से निकलते ही जरासन्ध बोला कि याचक को दाता की पीर नहीं होती तो भी दानी धीर अपनी प्रकृति नहीं छोड़ता इसमें सुख पावै कै दुःख। देखो हरि ने कपट रूप कर वामन बन राजा बलि के पास जाय तीन पग पृथ्वी माँगी। उस समय शुक्र ने बलि को चिताया, तो भी राजा ने अपना प्रण न छोड़ा।

चौ०—देह समेत मही तिन दई। ताकी जग में कीरति भई॥
याचक विष्णु कहा यश लीना। सर्बस हरि तोऊ हठ कीना॥

इससे तुम पहिले अपना नाम भेद कहो तब जो तुम माँगोगे सो मैं दूँगा, मैं मिथ्या नहीं भाषता। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, राजा! हम क्षत्री हैं वासुदेव मेरा नाम है, तुम भली भाँति हमें जानते हो और ये दोनों अर्जुन, भीम हमारे फुफेरे भाई हैं, हम युद्ध करने को तुम्हारे पास आये हैं हमसे युद्ध कीजै। हम यही तुमसे माँगने आये हैं और कुछ नहीं माँगते। महाराज! यह बात श्रीकृष्णचन्द्र जी से सुन जरासन्ध हँस कर बोला कि मैं तुझ से क्या लडूँ? तू मेरे सोंहीं से भाग चुका है और अर्जुन से भी न लडूँगा,

क्योंकि यह विदर्भ देश गया था तहाँ नारी का भेष करके रहा। भीमसेन से कहो तो इससे लड़ूँ, यह मेरे समान का है इससे लड़ने में मुझे कुछ लाज नहीं।

चौ०—पहिले तुम सब भोजन करो। पाछे मल्ल अखाड़े करो॥
भोजन दे नृप बाहर आयो। भीमसेन तहँ बोलि पठायो॥
अपनी गदा ताहि लिन दई। गदा दूसरी आपुनि लई॥
दो०—जहाँ सभा मण्डप बन्यो, बैठ जाय मुरारि॥
जरासन्ध अरु भीम तहँ, भये ठाढ़ हकारि॥
चौ०—टोपा शीश काछनी काछे। बने रूप नटवर से आछे॥

महाराज! जिस समय दोनो वीर अखाड़े में खम ठोंक गदा तान श्रखाड़ा पलट झूम कर सन्मुख आये, उस काल ऐसे जनाये कि मानो दो मतङ्ग मतवाले उठ धाये। आगे जरासन्ध ने भीम से कहा कि पहिले गदा तू चला क्योंकि तू ब्राह्मण का भेष ले मेरी पौर पर आया था इससे मैं पहिले प्रहार तुझ पर न करूँगा। यह बात सुन भीमसेन बोले कि, राजा! हम से तुमसे धर्म युद्ध है इससे यह ज्ञान न चाहिये। जिसका जी चाहे सो पहिले शस्त्र करे, महाराज! उन दोनो वीरो ने परस्पर ये बातें कर एक साथ ही गदा चलाई और युद्ध करने लगे।

चौ०—ताकत घातैं अपनी अपनी। चोट करत बाईं अरु दहिनी॥
अङ्ग बचाय उघरि पग धरैं। झपटैं गदा गदा सो लरैं॥
खटपट चोट गदा पटकारी। लागत शब्द कुलाहल भारी॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा महाराज! इसी भाँति वे दोनो बली दिन भर तो धर्म युद्ध

करते और साँझ को घर आय एक साथ भोजन कर विश्राम करते। ऐसे नित्य लड़ते लड़ते सत्ताइस दिन भये, तब एक दिवस उन दोनों के लड़ने के समय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने मनही मन विचारा कि यह तो न मारा जायगा क्योंकि जब यह जन्मा था तब दो फाँक हो जन्मा था। उस समय जरा राक्षसी ने आय जरासन्ध का मुँह और नाक मूँदी तब दोनों फाँक मिल गई। यह समाचार सुन उसके पिता बृहद्रथ ने ज्योतिषियों को बुलाय के पूछा कि, कहो! इस लड़के का नाम क्या होगा? और कैसा होगा? ज्योतिषियों ने कहा कि, महाराज! इसका नाम जरासन्ध हुआ और यह बड़ा प्रतापी और अजर अमर होगा, जब तक इसकी सन्धि न फटेगी तब तक यह किसी से न मारा जायगा। इतना कह ज्योतिषी विदा हो चले गये। महाराज! यह बात श्रीकृष्ण जी ने मन में शोच और अपना बल दे भीमसेन को तिनका चीर सैन से जनाया कि इसे इसी रीति से चीर डालो। प्रभु के चिताते ही भीमसेन ने जरासन्ध को पकड़ कर दे मारा और एक जाँघ पर पाँव दे दूसरा पाँव हाथ से पकड़ यों चीर डाला कि जैसे कोई दाँतन चीर डाले। जरासन्ध के मरते ही सुर नर गन्धर्व ढोल दमामे भेर बजाय २ फूल बर्षाय २ जय जयकार करने लगे और दु:ख द्वन्द्व जाय सारे नगर में आनन्द हो गया। उसी बिरियाँ जरासन्ध की नारी रोती पीटती आ श्रीकृष्णचन्द्र जी के सन्मुख खड़ी हो हाथ जोड़ बोली कि धन्य है धन्य है नाथ! तुम ने जो ऐसा काम किया, कि जिसने सर्वस्व दिया तुमने उसका प्राण लिया। जो जन ... वित्त और समर्पे देह, उससे तुम करते हो ऐसा ही स्नेह।

चौपाई

कपट रूप कर छल बल कियो। जगत आय तुम यह यश लियो॥

महाराज! जरासन्ध की रानी ने जब करुणा कर करुणानिधान के आगे हाथ जोड विनती कर यों कहा तब प्रभु ने दयालु हो पहिले जरासन्ध की क्रिया की। पीछे उसके सुत सहदेव को बुलाय राजतिलक दे सिंहासन पर बिठाय के कहा कि, पुत्र! नीति सहित राज्य कीजो और ऋषि मुनि गो ब्राह्मण की रक्षा करो।

सर्वभूपति हस्तिनापुर-गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! राजपाट पर बैठाय समझाय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सहदेव से कहा कि राजा! अब तुम जाय उन राजाओं को ले आओ जिन्हें तुम्हारे पिता ने पहाड की कन्दरा में मूँद रक्खा है। इतना बचन प्रभु के मुख से सुनते ही जरासन्ध का पुत्र सहदेव बहुत अच्छा कह कन्दरा के निकट जाय उसके मुख से शिला उठाय आठ सौ बीस सहस्र राजाओं को निकाल हरि के सन्मुख ले आया। आते ही हथकडियाँ बेडियाँ पहिने गले में साँकल लोहे की डाले, नख केश बढाये तन छीन मन मलीन मैले भेष, सब राजा प्रभु के सन्मुख पाँति २ खडे हो हाथ जोड विनती कर बोले—हे कृपासिन्धु! दीनबन्धु! आपने भले समय आय हमारी सुधि ली नहीं तो सब मर चुके थे। तुम्हारा दर्शन पाया हमारे जी में जी आया पिछला दुःख सब गँवाया। महाराज! इस बात के सुनते ही कृपासागर श्रीकृष्णचन्द्र ने ज्यों उन पर दृष्टि की त्यों बात की बात में सहदेव उनको ले जाय हथ-

कड़ी बेड़ी कटवाय क्षौर कराय निहलाय धुलवाय षट्रस भोजन खिलाय वस्त्र आभूषण पहराय शस्त्र अस्त्र बँधवाय पुनि हरि के सोंहीं लिवाय लाया। उस काल श्रीकृष्ण जी ने उन्हें चतुर्भुजी हो शंख चक्र गदा पद्म धारण कर दर्शन दिया। प्रभु का स्वरूप भूप देखते ही हाथ जोड़ बोले—नाथ! तुम संसार के कठिन बंधन से जीव को छुड़ाने हो। तुम्हें जरासंध की बंदि से हमें छुड़ाते क्या कठिन था? जैसे आपने कृपाकर हमें इस कठिन बन्धन से छुड़वाया तैसे ही अब हमें गृहरूप कूप से निकाल काम, क्रोध, लोभ, मोह से छुड़ाइये जो हम एक एकान्त बैठ आपका ध्यान धरैं और भवसागर तरैं। श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! जब सब राजाओं ने ऐसे ज्ञान वैराग भरे वचन कहे तब श्रीकृष्ण-चन्द्र प्रसन्न हो बोले कि सुनो जिसके मन में मेरी भक्ति है वे निस्सन्देह भुक्ति मुक्ति पावेंगे। बंध मोक्ष मन ही का कारण है, जिसका मन स्थिर है तिन्हें घर और वन समान है। तुम किसी बात की चिन्ता मत करो आनंद से घर में बैठ नीति सहित राज्य कर प्रजा को पालो, गो ब्राह्मण की सेवा में रहो, झूठ मत भाषो, काम लोभ क्रोध अभिमान तजो, भाव भक्ति से हरि को भजो, तुम निस्सन्देह परमपद पाओगे। संसार में आय जिसने अभिमान किया वह बहुत न जिया, देखो अभिमान ने किसे २ न खो दिया।

चौपाई

सहस बाहु अति बली बखान्यो। परशुराम ताको बल भान्यो॥
वेणु भूप रावण हो भयो। गर्ब्ब आपने सोऊ गयो॥

भौमासुर बाणासुर कंस। भये गर्व्वेते ते विध्वंस॥
श्रीमद गर्व्व करे जिन कोय। त्याग गर्व्व सो निर्भय होय॥

इतना कह श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सब राजाओं से कहा कि अब तुम अपने अपने घर जाओ कुटुम्ब से मिल अपना राजपाट सँभाल हमारे न पहुँचते पहुँचते हस्तिनापुर में राजा युधिष्ठिर के यहाँ राजसूय यज्ञ में शीघ्र आओ। महाराज! इतना वचन श्रीकृष्णचन्द्र जी के मुख से निकलते ही सहदेव ने सब राजाओं के जाने का सामान जितना चाहिये तितना बात की बात में ला उपस्थित किया। वे ले प्रभु से विदा हो अपने २ देश को गये और श्रीकृष्णचन्द्र जी भी सहदेव को साथ ले भीम अर्जुन सहित वहाँ से चले २ आनंद मङ्गल से हस्तिनापुर आये। आगे प्रभु ने राजा युधिष्ठिर के पास जाय जरासन्ध के मारने के समाचार और सब राजाओं के छुड़ाने के ब्योरे समेत कह सुनाये। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द जी के हस्तिनापुर पहुँचते पहुँचते वे सब राजा भी अपनी २ सेना ले भेंट सहित आन पहुँचे और राजा युधिष्ठिर से भेंट कर भेंट दी। श्रीकृष्णचन्द्र जी की आज्ञा ले हस्तिनापुर के चारों ओर जा उतरे और यज्ञ की टहल में आ उपस्थित हुए।

शिशुपाल-मोक्ष

श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! जैसे यज्ञ राजा युधिष्ठिर ने किया और शिशुपाल मारा गया, तैसे मैं सब कथा कहता हूँ तुम

चित्त दे सुनो। बीस सहस्र आठ सौ राजाओं के जाते ही चारो ओर के और जितने राजा थे क्या सूर्यवंशी और क्या चन्द्रवंशी तितने सब आय हस्तिनापुर में उपस्थित हुए। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र और राजा युधिष्ठिर ने मिल कर सब राजाओं का सब भाँति शिष्टाचार कर समाधान किया और हर एक को एक एक काम यज्ञ का सौंपा। आगे श्रीकृष्णचन्द्र जी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि, महाराज! भीम अर्जुन नकुल सहदेव सहित हम पाँचो भाई तो सब राजाओं को साथ ले ऊपर की टहल करें और आप ऋषि मुनि ब्राह्मणों को बुलाय यज्ञ का आरम्भ कीजिये। महाराज! इतनी बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने सब ऋषि मुनि ब्राह्मणों को बुलाय कर पूँछा कि, महाराज! जो जो वस्तु यज्ञ में चाहिये सो २ आज्ञा कीजै। महाराज! इस बात के सुनते ही ऋषि मुनि ब्राह्मणों ने ग्रंथ देख देख यज्ञ की सब सामग्री एक पत्र पर लिख दी और राजा ने वहीं मँगवाय उनके आगे धरवा दीं। ऋषि मुनि ब्राह्मणों ने मिल यज्ञ की वेदी रची, चारो वेद के सब ऋषि मुनि ब्राह्मण वेदी के बीच आसन बिछा बिछा जाय बैठे। पुनि पवित्र होय स्त्री सहित गाँठ जोड़ बाँध राजा युधिष्ठिर भी आय बैठे और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, शिशुपाल आदि जितने योद्धा और बड़े बड़े राजा थे वे भी आन बैठे। ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन कर गणेश पुजवाय, कलश स्थापन कर ग्रहस्थापन किया। राजा ने भरद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, पराशर, व्यास, कश्यप आदि बड़े २ ऋषि मुनि ब्राह्मणों का वरण किया और उन्होंने वेद मंत्र पढ़ पढ़ सब देवताओं

हतत्स यह वचन रोकड़ मत्मत्म विदा हो इतना कह पुन मनि अपन घर गई कि, यह सौ अपराध क्यों करेगा जो कृष्ण के हाथ से मारेगा। महाराज! इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्ण जी ने सब राजाओं के मन का भ्रम मिटाय उन लकीरों को गिना जो एक एक अपराध पर खैंची थीं, गिनते ही सौ से बढ़ती हुई। तभी प्रभु ने सुदर्शनचक्र को आज्ञा दी उसने झट शिशुपाल का सिर काट डाला। उसमें यह से जो ज्योति निकली सो सबकार आकाश को धाइ फिर आय सबके देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र के मुख में समाई। यह चरित्र देख सुर मुनि जयजयकार करने लगे और पुष्प बरसाने लगे, उस काल श्रीमुरारी भक्त हितकारी ने उसे तीसरी मुक्ति दी और उसकी क्रिया की। इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूँछा कि, महाराज! तीसरी मुक्ति प्रभु ने किस भाँति दी सो मुझे समझाय के कहिये। श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! एक बार यह हिरण्यकशिपु हुआ, तब प्रभु ने नृसिंह अवतार ले तारा। दूसरी बार रावण भया, तो हरि ने रामावतार ले उसका उद्धार किया अब तीसरी बिरियां यह है इसी से तीसरी मुक्ति भई। इतना सुन राजा ने मुनि से कहा कि, महाराज! अब आगे कथा कहिये। श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! यज्ञ के चुकते ही राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को स्त्री सहित बागे पहराये ब्राह्मणों को अगणित दान दिया। देने का काम यज्ञ में राजा दुर्योधन का था, द्वेष कर एक की ठौर अनेक दिये। इसमें उसका यश हुआ तो भी व

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज ! यज्ञ के पूर्ण होते ही श्रीकृष्णजी राजा युधिष्ठिर से विदा हो सब सेना ले कुटुम्ब सहित हस्तिनापुर से चले २ द्वारकापुरी पधारे। प्रभु के पहुँचते ही घर २ मंगलाचार होने लगा और सारे नगर में आनन्द हो गया।

सुदामा-द्वारका-गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! अब मैं सुदामा की कथा कहता हूँ कि, जैसे वह प्रभु के पास गया और उसका दरिद्र कटा, सो तुम मन दे सुनो। दक्षिण दिशा की ओर है एक द्राविड देश, तहाँ विप्र और वणिक बसते थे नरेश। जिसके राज्य में घर घर होता था भजन स्मरण और हरि का ध्यान, पुनि सब करते थे तप यज्ञ, धर्म्म, दान और साधु सन्त गौ ब्राह्मण का सन्मान।

चौ०—ऐसे सबही तिहि ठौर। हरि बिन कछू न जानै और॥

तिसि देश में सुदामा नाम ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्र का गुरुभाई अतिदीन तनछीण महादरिद्री ऐसा कि जिसके घर पै न घास न खाने को कुछ रहता था। एक दिन सुदामा की स्त्री दरिद्र से अति घबराय, महादुख पाय, पति के निकट जाय, भय खाय, डरती काँपती बोली कि, महाराज ! अब इस दरिद्र के हाथ से महादुख पाते हैं। जो आप इसे खोया चाहिये तो मैं एक उपाय बताऊँ ब्राह्मण बोला—सो क्या ? कहा तुम्हारे परममित्र त्रिलोकी-नाथ द्वारकावासी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द हैं, जो उनके पास जाओ तो यह जाय। क्योंकि वे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के दाता

हैं। महाराज! जब ब्राह्मणी ने ऐसा समझाय कर कहा तब सुदामा बोला कि, प्रिये! बिन दिये श्रीकृष्णचन्द्र भी किसी को कुछ नहीं देते, मैं भली भांति से जानता हूँ कि जन्म भर मैंने किसी को कभी कुछ नहीं दिया, बिन दिये वहाँ से पाऊँगा। हाँ तब वहाँ से जाऊँगा तो श्रीकृष्ण जी के दर्शन कर आऊँगा। इस बात के सुनते ही ब्राह्मणी ने एक अति पुराने धौले वस्त्र में थोड़े से चावल बाँध ला दिये, प्रभु की भेंट के लिये और डोरी लोटा लाठी ला आगे धरी। तब तो सुदामा डोरी लोटा काँधे पर डाल चावल की पोटली काँख में दबाय, लाठी हाथ में ले गणेश को मनाय, श्रीकृष्ण जी का ध्यान कर, द्वारकापुरी को पधारा। महाराज! बाट ही में चलते २ सुदामा मनही मन कहने लगा कि, भला धन तो मेरे प्रारब्ध में नहीं पर द्वारका जाने से श्री कृष्णचन्द्र आनन्द-कन्द का दर्शन तो पाऊँगा। इसी भांति से सोच विचार करता २ सुदामा तीन पहर के बीच द्वारकापुरी में पहुँचा तो क्या देखता है कि नगर के चारों ओर समुद्र है और बीच में पुरी, वह पुरी कैसी है कि जिसके चहुँ ओर बन उपबन फल फूल रहे हैं, तड़ाग बापी इन्दारा पर रहँट परोह चल रहे हैं ठौर ठौर गायों के यूथ के यूथ चर रहे हैं, तिनके साथ ग्वाल बाल न्यारे ही कुतूहल करते हैं। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! सुदामा बन उपबन की शोभा निरख पुरी के भीतर जाय देखे तो कञ्चन के मणिमय मन्दिर महासुन्दर जगमगाय रहे हैं, ठाँव ठाँव अथाइयों में यदुवंशी इन्द्र की सी सभा किये बैठे हैं, हाट बाट चौहटों में [illegible] की वस्तु बिक रही हैं, घर घर जिधर तिधर गान दान

हरि भजन और प्रभु का यश हो रहा है और सारे नगर निवासी सदा ध्यान ही में हैं। महाराज ! यह चरित्र देखता २ और श्री-कृष्णचन्द्र का मन्दिर पूँछता सुदामा जा प्रभु की सिंह पौर पर खड़ा हुआ। इसने किसी से डरते २ पूछा कि श्रीकृष्णचन्द्र जी कहाँ विराजते हैं? उसने कहा कि, देवता ! आप मन्दिर के भीतर जाओ सन्मुख ही श्रीकृष्णचन्द्र जी रत्न सिंहासन पर बैठे हैं। महाराज ! इतना वचन सुन सुदामा जी भीतर गया तो देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र सिंहासन से उतर आगे बढ़ भेंट कर अति प्यार से हाथ पकड़ उसे ले गए। पुनि सिंहासन पर बिठाय पाँव धोय चरणामृत लिया। आगे चन्दन चरच, अक्षत लगाय, पुष्प चढ़ाय, धूप दीपकर, प्रभु ने सुदामा की पूजा की।

चौ०—इतनी करके जोरे हाथ। कुशल क्षेम पूँछत यदुनाथ॥

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि, महाराज ! यह चरित्र देख श्रीरुक्मिणी जी समेत आठों पटरानियाँ और सोलह सहस्र एक सौ रानियाँ और सब यदुवंशी जो उस समय वहाँ थे मन ही मन में कहने लगे कि, इस दरिद्री दुर्बल मलीन वस्त्रहीन ब्राह्मण ने ऐसा क्या अगले जन्म पुण्य किया था, जो त्रिलोकीनाथ ने इसे इतना माना ? महाराज ! अन्तर्यामी श्री-कृष्णचन्द्र उस काल सब के मन की बात समझ उनके सन्देह मिटाने को सुदामा से गुरु के घर की बात करने लगे। भाई ! तुम्हें वह सुधि है जो एक दिन गुरुपत्नी ने हमें तुम्हें ईंधन लेने भेजा था और जब वन से ईंधन ले गठरियाँ बाँध शिर पर धर घर को चले तब आँधी और मेह आया और लगा मूसलाधार बरसने,

जल थल चारों ओर भर गया हम तुम न भींग कर महादुःख पाया जाड़ा खाय रात भर एक वृक्ष के नीचे रहे, भोर ही गुरुदेव वन में ढूँढ़ने आय और अति करुणा कर आशीश दे हमें तुम्हें अपने साथ घर लिवाय लाये।

इतना कह पुनि श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले कि, भाई! जब से तुम गुरुदेव के यहाँ से बिछुड़े तब से हमने तुम्हारा समाचार न पाया था कि कहाँ थे और क्या करते थे? अब आय दर्श दिखाय तुमने हमें महा सुख दिया और घर पवित्र किया। सुदामा बोला—हे कृपासिन्धु! दीनबन्धु! स्वामी अन्तर्यामी! तुम सब जानते हो, कोई बात संसार में ऐसी नहीं जो तुम से छिपी हो।

सुदामा-दारिद्रगमन

श्रीशुकदेव मुनि जी बोले कि, महाराज! अन्तर्यामी श्रीकृष्ण जी ने सुदामा की बात सुन और उसके अनेक मनोरथ समझ हँस कर कहा कि, भाई! भाभी ने हमारे लिये क्या भेंट भेजी है? सो देते क्यों नहीं? काँख में किस लिये दबाय रहे हो? महाराज! यह वचन सुन सुदामा तो सकुचाय शिर झुकाय रहा और प्रभु ने झट चावल की पोटली उसकी काँख से निकाल ली। पुनि खोल उसमें से अति रुचि कर दो मुट्ठी चावल खाय और ज्यों तीसरी मुट्ठी भरी त्यों श्री रुक्मिणी जी ने हरि का हाथ पकड़ा और कहा कि, महाराज! आपने दो लोक तो इसे दिये, अब अपने रहने को भी कोई ठौर रक्खोगे कि नहीं।। यह तो ब्राह्मण सुशील कुलीन अति

वैरागी महात्यागी सा दृष्टि आता है क्योंकि इसे विभव पाने में कुछ हर्ष न हुआ। इससे मैंने जाना कि ये लाभ हानि समान जानते हैं, इन्हें पाने का हर्ष न पाने का शोक।

इतनी बात रुक्मिणी जी के मुख से निकलते ही श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा कि, हे प्रिये! यह मेरा परम मित्र है। इसके गुण मैं कहाँ तक बखानूँ सदा सर्वदा मेरे स्नेह में मग्न रहता है और उसके आगे संसार के सुख तृणवत् समझता है। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! ऐसे अनेक २ प्रकार की बातें कर प्रभु रुक्मिणी जी को समझाय सुदामा को मन्दिर में लिवाय ले गये। आगे षट्रस भोजन करवाय, पान खिलाय, हरि सुदामा को फेन सी सेज पर ले जाय बैठाया। वह पथ का हारा थका तो था ही सेज पर जाय सुख पाय सो गया। प्रभु ने उस समय विश्वकर्मा को बुलाय के कहा कि तुम अभी जाय सुदामा के मन्दिर अति सुन्दर कञ्चन रत्न के बनाय तिन में अष्टसिद्धि नवनिधि धर आओ जो इसे किसी बात की कांक्षा न रहे। इतना वचन प्रभु के मुख से निकलते ही विश्वकर्मा वहाँ जाय बात की बात में बनाय आया और हरि से कह अपने स्थान को गया। भोर होते ही सुदामा उठा स्नान ध्यान भजन पूजा से निश्चिन्त हो प्रभु के पास विदा होने गया। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र जी मुख से तो कुछ न बोले पर प्रेम में मग्न हो आँखें डबडबाय शिथिल हो देखते रहे। सुदामा विदा हो प्रणाम कर अपने घर को चला और पन्थ में जाय मनहीं मन विचार करने लगा कि, भला भया जो मैंने प्रभु

१ कुछ न माँगा जो उनसे कुछ माँगना तो वे दन तो सही पर मुझे लोभी लालची समझते। कुछ चिन्ता नहीं, ब्राह्मणी को मैं समझाय लूँगा। श्रीकृष्णचन्द्र जी ने मेरा अति मान सन्मान किया और निर्लोभी जाना, यही मुझे लाख है। महाराज! ऐसे सोच विचार करता करता सुदामा अपने ग्राम के निकट आया, तो क्या देखता है कि न वह ठौर है न वह टूटी मड़ैया, वहाँ तो एक इन्द्रपुरी सी बस रही है। देखते ही सुदामा अति दुखित हो कहने लगा कि हे नाथ! तू ने यह क्या किया? एक दुःख तो था ही दूसरा और दुःख दिया। यहाँ से मेरी झोंपड़ी क्या हुई? और ब्राह्मणी कहाँ गई, किसे पूँछूँ और किधर ढूँढूँ। इतना कह द्वार पर जाय सुदामा ने द्वारपाल से पूँछा कि यह मन्दिर अति सुन्दर किसका है? द्वारपाल ने कहा श्रीकृष्णचन्द्र जी के मित्र सुदामा के हैं। यह बात सुन सुदामा ज्या कुछ कहने को हुआ त्यों भीतर से देख उसकी ब्राह्मणी अच्छे वस्त्र आभूषण पहिन नख शिख से शृङ्गार किये पान खाय सुगन्ध लगाय सखियों को साथ लिये पति के निकट आई।

चौ०--पायन पर पाटम्बर डारे। हाथ जोड़ ये वचन उचारे॥
ठाड़े क्या मन्दिर पग धारौ। मनसा सोच करो तुम न्यारौ॥
तुम पाछे विश्वकर्मा आये। तिन मन्दिर पल माँझ बनाये॥

महाराज! इतनी बात ब्राह्मणी के मुख से सुन सुदामा जी मन्दिर में गये और अति विभव देख महा उदास भये। ब्राह्मणी बोली--स्वामी धन पाये लोग प्रसन्न होते हैं तुम उदास हुए इसका ...है? सो कृपा कर कहिये, जो मेरे मन का सन्देह

जाय। सुदामा बोला कि, हे प्रिये! यह माया बडी ठगनी है, इसने सारे संसार को ठगा है और ठगती है, और ठगेगी। सो प्रभु ने मुझे दी और मेरे प्रेम की प्रतीति न की मैंने उनसे कब माँगी थी जो उन्होंने मुझे दी? इसी से मेरा चित्त उदास है। ब्राह्मणी बोली स्वामी जी! तुमने तो श्रीकृष्णचन्द्र से कुछ न माँगा था पर वे अन्तर्यामी घट घट की जानते हैं मेरे मन में धन की वासना थी सो प्रभु ने पूरी की। तुम अपने मन में और कुछ मत समझो। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! इस प्रसंग को जो सुने सुनावेगा, सो संसार जगत में आय दुःख कभी न पावेगा, और अन्तकाल बैकुण्ठ धाम जावेगा।

वसुदेव-यज्ञकरण

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! अब मैं सब ऋषियों के आने की और वसुदेव जी के यज्ञ करने की कथा कहता हूँ तुम चित्त दे सुनो। महाराज! एक दिन राजा उग्रसेन, शूरसेन, वसुदेव, श्रीकृष्ण, बलराम, सब यदुवंशियों समेत सभा किये बैठे थे और सब देश देश के नरेश वहाँ उपस्थित थे कि इस बीच श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के दर्शन की अभिलाषा कर व्यास, वसिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, पराशर, भृगु, पुलस्त्य, भरद्वाज, मार्कण्डेय आदि अट्ठासी सहस्र ऋषि वहाँ आय और तिनके साथ नारद जी भी। उन्हें देखते ही सभा की सभा सब उठ खड़ी हुई, पुनि सब दण्डवत कर पाटम्बर के पाँवड़े डाल सबको सभा में ले

गुण गाते थे, चारण वन्दीजन यश बखानते थे, उर्वशी आदि अप्सरा नाचती थीं और देवता अपने २ विमानों में बैठे फूल बर्षाते थे और इधर सब मंगली लोग गाय बजाय मङ्गलाचार करते थे और याचक जयजयकार। इसमें यज्ञ पूर्ण हुआ और बसुदेव जी पूर्णाहुति दे ब्राह्मणों को पाटम्बर पहिराय अलङ्कृत कर रत्न धन बहुत सा दिया और उन्होंने वेद मन्त्र पढ़ २ आशीर्बाद दिया। सब देश २ के नरेशों को भी बसुदेव जी ने पहिराया और जिमाया, पुनि उन्होंने यज्ञ की भेंट कर २ बिदा हो अपनी बाट ली। महाराज! सब राजाओं के जाते ही नारद जी समेत सारे ऋषि मुनि भी बिदा हुए। पुनि नन्दराय जी गोपी गोप ग्वालबाल समेत सब बसुदेव जी से बिदा होने लगे, उस समय की बात कुछ कही नहीं जाती। इधर तो यदुबंशी करुणाकर अनेक २ प्रकार की बातें करते थे और उधर सब ब्रजबासी, उसका बखान कुछ कहा नहीं जाता वह सुख देखते ही बनि आवे। निदान बसुदेव जी और श्रीकृष्णचन्द्र बलराम जी ने सब समेत नन्दराय जी को समझाय बुझाय पहिराय और बहुत सा धन दे बिदा किया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! इस भाँति श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी पर्व न्हाय यज्ञ कर सब समेत जब द्वारकापुरी में आये तो घर २ आनन्द मङ्गल भये बधाये।

देवकी मृतक पुत्र-जीवन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! द्वारकापुरी में बीच एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी जो वसुदेव जी के पास गये तो वे इन दोनों भाइयों को देख यह ध्यान मन में विचार उठ खड़े हुए कि कुरुक्षेत्र में नारद जी ने कहा था कि श्रीकृष्णचन्द्र जगत् के कर्त्ता हैं और हाथ जोड़ बोले कि, हे प्रभु! अलख अगोचर अविनाशी, सदा सेवती है तुम्हें कमला भई दासी। तुम हो सब देवों के देव कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव। तुम्हारी ही ज्योति है चन्द्र, सूर्य्य, पृथ्वी, आकाश, तुम्हीं करते हो सब ठौर प्रकाश। तुम्हारी माया है प्रबल, उसने सारे संसार को भुलाय रक्खा है, त्रिलोकी में सुर नर मुनि ऐसा कोई नहीं जो उसके हाथ से बचा हो। महाराज! इतना कह पुनि वसुदेव जी बोले कि, नाथ!

चौपाई

कोउ न भेद तुम्हारो जानै। वेदन चौमुख अगम बखानै॥
शत्रु मित्र नहिं कोउ तिहारो। पुत्र पिता न सहोदर प्यारो॥
पृथ्वी भार हरण अवतरो। जन के हेतु भेष बहु धरो॥

महाराज! ऐसे कह वसुदेव जी बोले कि, हे करुणासिंधु! दीनबन्धु! जैसे आपने अनेक २ पतितों को तारा, तैसे कृपा कर मेरा भी निस्तार कीजै जो भवसागर के पार हो आपके गुण गाऊँ। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे पिता! तुम ज्ञानी होकर पुत्रों की बड़ाई क्या करते हो? टुक आप ही मन में विचारो कि

मा रूप से खोला और बहुत सा टोना तब तो लाज छोड़ कर य हाथ जोड़ प मुँह को फाड़ म घिघियाय यह लिखता हूँ।

इस दिन जो मैं हरियाली देखन को गया था। एक हिरनी मरे सामने कनौतियाँ उठाए आगई उसके पीछे मैंने घोड़ा पग छुट फेंका। जब तक उजाला रहा उसके धुन में बहका किया जब सूरज डूबा मेरा जी ऊबा सुहानी सी अमराइयाँ ताड़ प मैं उन में गया तो उन अमराइयों का पत्ता पत्ता मेरे जी का गाहक हुआ। वहाँ का यह सोहिला है, कुछ रंडियाँ झूला डाले झूल रही थीं। उनकी सरधरी कोई रानी केतकी महाराज जगतपरकास की बेटी हैं। उन्होंने यह अँगूठी अपनी मुझे दी और मेरी अँगूठी उन्होंने लेली और लिखौट भी लिख दी सो यह अँगूठी उनकी लिखौट समेत मेरे लिखे हुए के साथ पहुँचती है। अब आप पढ़ लीजिए जिस में बेटे का जी रह जाय सो कीजिए।' महाराज और महारानी न अपने बेटे के लिखे हुए पर सोने के पानी से यों लिखा। 'हम दोनों ने इस अँगूठी और लिखौट को अपनी आँखों से मला अब तुम इतने कुछ कुढ़ो पचो मत। जो रानी केतकी के माँ बाप तुम्हारी बात मानते हैं तो हमारे समधी और समधिन हैं और दोनों राज एक हो जाएँगे और जो कुछ नाह नूह ठहरेगी तो जिस ढोल से बन आवेगा ढाल तलवार के बल तुम्हारी दुल्हन हम तुम से मिला देंगे। आज से उदास मत रह करो खेलो कूदो बोलो चालो आनंदें करो। अच्छी घड़ी शुभ मुहूरत सोच के तुम्हारी ससुराल में किसी बाम्हन को भेजते हैं जो बात चीत चाही ठीक कर

लाने।' और शुभ घडी शुभ मुहूरत देख के रानी केतकी के माँ बाप के पास भेजा।

बाम्हन जो शुभ मुहूरत देखकर हडबडी से गया था उस पर बुरी घड़ी पड़ी। सुनते ही रानी केतकी के माँ बाप ने कहा 'हमारे उनके नाता नहीं होने का। उनके बाप दादे हमारे बाप दादे के आगे सदा हाथ जोड कर बातें किया करते थे और टुक जो तेवरी चढ़ी देखते थे बहुत डरते थे। क्या हुआ जो अब वह बढ़ गए ऊँचे पर चढ़ गए, जिन के माथे हम बाँएँ पाँव से अँगूठे से टीका लगावें वह महाराजों का राजा हो जावे। किसी का मुँह जो यह बात हमारे मुँह पर लावे।' बम्हन ने जल भुन के कहा 'अगले भी बिचारे ऐसे ही कुछ हुए हैं। राजा सूरजभान भी भरी सभा में कहते थे हममें उनमें कुछ गोत का तो मेल नहीं। यह कुँवर की हठ से कुछ हमारी नहीं चलती नहीं तो एसी ओछी बात कब हमारे मुँह से निकलती।' यह सुनते ही उस महाराज ने बाम्हन के सिर पर फूलों की चगेर फेंक मारी और कहा 'जो बम्हन की हत्या का धड़का न होता तो तुमको अभी चक्की में दलवा डालता' और अपने लोगों से कहा 'इसको ले जाओ और ऊपर एक अँधेरी कोठरी में मूँद रक्खो।' जो इस बाम्हन पर बीती तो सब उदैभान के माँ बाप ने सुनी। सुनते ही लड़ने को अपना ठाट बाँध भादों के दल बादल जैसे घिर आते हैं चढ़ आया। जब दोनों महाराजों में लड़ाई होने लगी रानी केतकी सावन भादों के रूप ममान रोने लगी और दोनों के जी में यह आ गई यह कैसी चाहत जिस में लोहू बरसने लगा

और अच्छी बातों को जी तरसने लगा। कुँवर ने चुपके से यह लिख भेजा 'अब मेरा कलेजा टुकड़े टुकड़े हुआ जाता है। दोनों महाराजों को आपस में लड़ने दो किसी डौल से जो हो सके तो तुम मुझे अपने पास बुला लो हम तुम दोनों मिलके किसी और देश निकल चलें होनी हो सो हो सिर रहता रहे, जाता जाय।' एक मालिन जिसको फूलकली कर सब पुकारते थे उसने उस कुँवर की चिट्ठी किसी फूल की पँखड़ी में लपेट सपेट कर रानी केतकी तक पहुँचा दी। रानी ने उस चिट्ठी को अपनी आँखों लगाया और मालिन को एक थाल मोती दिये और उस चिट्ठी की पीठ पर अपने मुँह की पीक से यह लिखा 'ऐ मेरे जी के गाहक, जो तू मुझे बोटी बोटी करके चील कौवों को दे डाले तो भी मेरी आँखों चैन और कलेजे सुख हो पर यह बात भाग चलने की अच्छी नहीं। इसमें एक बाप दादे को चिट लग जाती है और जब तक माँ बाप जैसा कुछ होता चला आता है, उसी डौल से बेटा बेटी को किसी पर पटक न मारें और सर से किसी के चेपक न दें तब तक यह एक जी तो क्या जो करोर जी जाते रहे, कोई बात तो हमें रचती नहीं।'

यह चिटठी जो पीक भरी कुँवर तक जा पहुँची उस पर कई एक थाल सोने के हीरे मोती पुखराज के खचाखच भरे हुए निछावर करके लुटा देता है। और जितनी उसे बेचैनी थी उससे चौगुनी पचगुनी हो जाती है और उस चिटठी को अपने उस गोरे पर बाँध लेता है।

जगतपरकास अपने गुरु का, जो कैलाश पहाड़ पर रहता था, लिख भजता है 'कुछ हमारा सहाय कीजिये, महा कठिन हम पर विपता आ पड़ी है। राजा सूरजभान को अब यहाँ तक बाव बँदेक ने लिया है जो उन्होंने हम से महाराजों से डौल किया है।'

कैलास पहाड़ जो एक डौल चाँदी का है उस पर राजा जगन-परकास का गुरु, जिसको महेन्द्रगिर सब इन्द्रलोक के लोग कहते थे, ध्यान ज्ञान मे कोई नब्बे लाख अतीतों के साथ ठाकुर के भजन मे दिन रात लगा रहता था। सोना रूपा ताँबे राँगे का बनाना तो क्या और गुटका मुँह में लेकर उड़ना परे रहे उसको और बातें इस ढब की ध्यान में थीं जो कहने सुनने से बाहर हैं। मेंह सोने रूपे का बरसा देना और जिस रूप में चाहना हो जाना सब कुछ उसके आगे खेल था, गाने बजाने मे महादेव जी छूट उसके आगे कान पकड़ते थे। सरस्वती जिसको सब लोग कहते थे उसने भी कुछ गुनगुनाना उसी से सीखा था। उसके सामने छ राग छत्तीस रागिनियाँ आठ पहर रूप बन्दियों का सा धरे हुए उसकी सेवा में सदा हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं और वहाँ अतीतों को गिर कह कर पुकारते थे—भैरो गिर, बिभास गिर, हिंडोल गिर, मघनाथ, केदारनाथ, दीपकसेन, जोतीसरूप, सारङ्ग रूप और अतीतिनें इस ढब से कहलाती थीं गूजरी, टोडी, असावरी, गौरी, मालसिरी, बिलावली। जब चाहता अधर में सिंहासन पर बैठ कर उड़ाये फिरता था और नब्बे लाख अतीत गुटके अपने

मुँह मे लिये गेरुवे वसतर पहने जटा बिखरे उसके साथ होते थे। जिस घडी रानी केतकीके बापकी चिट्ठी एक बगला उसके घर तक पहुचा देता है गुरु महेन्दर गिर एक चिंघाड मार कर दल बादलों को ढलका देता है, बघम्बर पर बैठ भभूत अपने मुँह से मल कुछ कुछ पढन्त करता हुआ बाव क घोडे के पीठ लगा और सब अतीत मृगछालों पर बैठे हुये गुटके मुँह में लिए हुए बोल उठे "गोरख जागा और मुछन्दर भागा"। एक आँख की झपक में वहाँ आ पहुँचता है जहाँ दोना महाराजों में लडाई हो रही थी। पहले तो एक काली आँधी आइ फिर ओले बरसे फिर टिड्डी आई। किसी को अपनी सुध न रही। राजा सूरजभान क जितने हाथी घोडे और जितने लोग और भीड भाड थी कुछ न समझा कि क्या किधर गई और उन्हे कौन उठा ले गया। राजा जगतपरकास क लोगो पर और रानी केतकी क लोगो पर केवडे क बूँदो की नन्ही नन्ही फुहार सी पडने लगी। जब यह सब कुछ हो चुका तो गुरु जी ने अतीतियों से कहा 'उदैभान सूरजभान लछमीबास इन तीनों को हिरनी हिरन बनाक किसी बन मे छोड दो और जो उनक साथी हों उन सभो को तोड फोड दो।' जैसा कुछ गुरु जी ने कहा झट पट वही किया। बिपत का मारा कुँवर उदैभान और उसका बाप वह राजा सूरजभान और उसकी मा लछमीबास हिरनी हिरन बन गए। हरी घास कई बरस तक चरते रहे और उस भीड भाड का तो कुछ थल बेडा न मिला किधर गए और कहा य। बस यहाँ की यहीं रहने दो। फिर सुनो। अब रानी

केतकी के बाप महाराजा जगतपरकास को सुनिये। उनके घर का घर गुरू जी के पाव पर गिरा और सब ने सर झुका कर कहा 'महाराज यह आप ने बड़ा काम किया। हम सब को रख लिया। जो आज आप न पहुँचते तो क्या रहा था। सब ने मर मिटने की ठान ली थी। इन पापियों से कुछ न चलेगी यह जानते थे। राज पाट हमारा अब निछावर करके जिसको चाहिये दे डालिये। राज हमसे नहीं थम सकता। सूरजभान के हाथ से आपने बचाया। अब कोई उनका चचा चन्द्रभान चढ़ आवेगा तो क्या बचना होगा। अपने आप में तो सकत नहीं फिर ऐसे राज का फिटे मुँह कहाँ तक आपको सताया करें।' जोगी महेन्दर गिर ने यह सुनकर कहा 'तुम हमारे बेटा हो, अनन्दें करो, दनदनाओ, सुख चैन से रहो। अब वह कौन है जो तुम्हें आँख भर कर और ढब से देख सके। यह बघम्बर और यह भभूत हमने तुमको दिया। जो कुछ ऐसी गाढ़ पड़े तो इसमें एक रोंगटा तोड़ आग में फूँक दीजिये। यह रोंगटा फुकने न पावेगा जो बात की बात में हम आ पहुँचेंगे। रहा भभूत, सो इस लिये है जो कोई इसे अञ्जन करे वह सबको देखे और उसे कोई न देखे जो चाहे सो करे।

गुरु महेन्दर गिर के पाव पूजे और 'धन धन महाराज' कहे। उनसे तो कुछ छिपाव न था। महाराज जगतपरसाद उनको मुँहेल करते हुए अपनी रानियों के पास ले गये। सोने रूपे के फूल गोद भर भर सबने निछावर की और माथे रगड़े। उन्होंने सबकी पीठें

ठोकी। रानी कतकी ने भी गुरुजी को दण्डवत की पर जी में बहुत सी गुरुजी को गालियाँ दी। गुरुजी सात दिन सात रातें यहाँ रह कर जगतपरकास को सिंहासन पर बैठा कर अपने बघम्बर पर बैठ उसी डौल से कैलास पर आ धमके और राजा जगतपरकास अपने अगले ढब से राज करने लगा।

एक दिन रानी केतकी ने अपनी मा रानी कामलता को भुलावे में डाल कर यों कहा और पूछा—"गुरुजी गुसाई महेन्दर गिर ने जो भभूत मेरे बाप को दिया है, वह कहाँ रखा है और उससे क्या होता है?" रानी कामलता बोल उठी 'तेरी वारी! तू क्यों पूछती है?' रानी केतकी कहने लगी 'आँखें मिचौवल खेलने के लिये चाहती हूँ, जब अपनी सहेलियों के साथ खेलूँ और चोर बनूँ तो मुझको कोई पकड न सके'। महारानी ने कहा वह खेलने के लिये नहीं है। ऐसे लटके किसी बुरे दिन के सम्भालने को डाल रखते हैं क्या जाने कोई घडी कैसी है कैसी नहीं।" रानी केतकी अपनी मा की इस बात पर अपना मुँह थुथा कर उठ गई और दिन भर खाना न खाया। महाराज ने जो बुलाया तो कहा मुझे रुच नहीं। तब रानी कामलता बोल उठी 'अजी तुमने सुना भी, बेटी तुम्हारी आँख मिचौवल खेलने के लिए वह भभूत गुरुजी का दिया माँगती थी। मैंने न दिया और कहा लडकी वह लडकपन की बातें अच्छी नहीं किसी बुरे दिन के लिए गुरुजी दे गए हैं इसी पर मुझसे रूठी है बहुतेरा बहलाती हूँ मानती नहीं।

महाराज ने कहा 'भभूत तो क्या मुझे तो अपना जी भी उससे प्यारा नहीं, उसके एक पहर व पहल जाने पर एक जी तो क्या जो करोर जी हों तो दे डाले।" रानी केतकी को डिबिया में से थोड़ा सा भभूत दिया। कई दिन तलक आँख मिचौवल अपनी माँ बाप के सामने सहेलियों के साथ खेलती सबको हँसाती रही जो सौ सौ थाल मोतियों के निछावर हुआ किए। क्या कहूँ! एक चुहल थी जो कहिये तो करोड़ों पोथियों में ज्यों की त्यों न आ सके।

एक रात रानी केतकी उसी ध्यान में मदनबान से यों बोल उठी 'अब मैं निगोड़ी लाज से कुट करती हूँ तू मेरा साथ दे।' मदनबान ने कहा 'क्योंकर'। रानी केतकी ने वह भभूत का टोना उसे बताया और यह सुनाया 'यह सब आँख मिचौवल के झाईं झप्पे मैंने इसी दिन के लिए कर रक्खे थे।' मदनबान बोली 'मेरा कलेजा थरथराने लगा। अरी यह माना कि तुम अपनी आँखों में उस भभूत का अंजन कर लोगी और मेरे भी लगा दोगी तो हमें तुम्हें कोई न देखेगा और हम तुम सब को देखेंगी पर ऐसी हम कहाँ की चली हैं जो बिन साथ जोबन लिए बन बन में पड़ी भटका करें और हिरनों की सींगों पर दोनों हाथ डाल कर लटका करें और जिसके लिए यह सब कुछ है सो वह कहाँ और होय तो क्या जाने यह रानी केतकी है और यह मदनबान निगौड़ी नोची खसोटी उजड़ी [illegible] ली है। चूल्हे और भाड़ में जाय वह जिसके [illegible] माँ बाप का राज पाट सुख नींद लाज छोड़

नन्दियों व कछहरों में फिरना पड़े सो भी बेडौल जो वह अपने रूप में होते तो भला थोड़ा बहुत आसरा था। ना जी यह तो हम से न हो सकेगा जो महाराज जगतपरकास और महारानी कामलता का हम जान बूझकर घर उजाड़ें और उनकी जो इकलौती लाडली बेटी है उसको भगा ले जावें और जहाँ तहाँ उसे भटकावें और बनासपत्ती खिलावें और अपने घाड़े को हिलावें। जब तुम्हारे और उसके माँ बाप में लड़ाई हो रही थी और उन्ने उस मालिन के हाथ तुम्हें लिख भेजा था जो मुझे अपने पास बुलालो, महाराजों को आपस में लड़ने दो जो होनी हो सो हम तुम मिल के किसी देस को निकल चलें। उस दिन न समझीं तब तो वह ताव भाव दिखाया अब जो वह कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप तीनों जी हिरनी हिरन बन गए। क्या जाने किधर होंगे। उनके ध्यान पर इतनी कर बैठिए जो किसी ने तुम्हारे घराने में न की अच्छी नहीं। इस बात पर पानी डाल दो नहीं तो पछतावोगी और अपना किया पाओगी। मुझ से कुछ न हो सकेगा। तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती तो मेरे मुँह से जीते जी न निकलती पर यह बात मेरे पेट नहीं पच सकती। तुम अभी अल्हड़ हो तुमने अभी कुछ देखा नहीं जो ऐसी बात पर सचमुच ढलाव देखूँगी तो तुम्हारे बाप से कहकर वह भभूत जो वह गुरु निगोड़ा भूत मुछन्दर का पूत अवधूत दे गया है, हाथ मुरकवा कर छिनवा लूँगी।' रानी केतकी ने यह रूखाइयाँ मदनबान की सुनकर हँस कर टाल दिया और कहा 'जिसका जी ठिकाने में न हो उसे ऐसी लाखों सूझती हैं पर कहने और करने में बहुत सा फेर है। भला यह कोई अंधेर

है जो मैं माँ बाप राज पाट लाज छोड़कर हिरन के पीछे दौड़ती करछालें मारती फिरूँ पर अरी तू तो बड़ी बावली चिड़िया है जो यह बात सच जानी और मुझ से लड़ने लगी।'

दस पन्द्रह दिन पीछे एक दिन रानी केतकी बिन कहे मदनबान के वह भभूत आँखों में लगा के घर से बाहर निकल गई। कुछ कहने में आता नहीं जो माँ बाप पर हुई। सब ने यह बात ठहराई, गुरु जी ने कुछ समझ कर रानी केतकी को अपने पास बुला लिया होगा। महाराज जगतपरकास और महारानी कामलता राज पाट उस वियोग में छोड़ छाड़ के एक पहाड़ की चोटी पर जा बैठे और किसी को अपने लोगों में से राज थामने को छोड़ गये। बहुत दिनों पर पीछे एक दिन महारानी ने महाराज जगतपरकास से कहा 'रानी केतकी का कुछ भेद जानती होगी तो मदनबान जानती होगी। उसे बुलाकर पूछो तो'। महाराज ने उसे बुला कर पूछा तो मदनबान ने सब बात खोलियाँ। रानी केतकी के माँ बाप ने कहा 'अरी मदनबान जो तू भी उसके साथ होती तो हमारा जी भरता—अब जो वह तुझे ले जाय तो कुछ हचर पचर न कीजियो। उसके साथ हो लीजियो जितना भभूत है तू अपने पास रख। हम कहाँ इस राख को चूल्हे में डालेंगे। गुरु जी ने दोनों राज्य का खोज खोया। कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप दोनों अलग हो रहे। जगतपरकास और कामलता को यों तलपट किया। [illegible] ने दोनों को यह बातें कहके को सामने

आतीं'। मदनबान भी उनके ढूँढने को निकली। अंजन लगाये हुए 'रानी केतकी रानी केतकी' कहती हुई पड़ी फिरती थी। बहुत दिनों पीछे कहीं रानी केतकी भी हिरनों की दहाड़ों में 'उदैभान उदैभान' चिंघाड़ती हुई आ निकली। एक ने एकको ताड़ कर पुकारा 'अपनी तनी आँखें धो डालो'। एक डबरे पर बैठ कर दोनों की मुठभेड़ हुई। गले लग के ऐसी रोइयाँ जो पहाड़ों में कूक सी पड़ गई।

दोनों जनियाँ एक अच्छी सी छाँव को ताड़ कर आ बैठियाँ और अपनी अपनी दोहराने लगीं।

रानी केतकी ने अपनी बीती सब कही और मदनबान वही अगला झींकना झींका की और उनके माँ बाप ने जो उनके लिए जोग साधा था जो बियोग लिया था सब कहा। जब यह सब कुछ हो चुकी तब फिर हँसने लगी।

पर मदनबान से कुछ रानी केतकी के आँसू पुछते चले। उन्ने यह बात कही 'जो तुम कहीं ठहरो तो मैं तुम्हारे उन उजड़े हुए माँ बाप को चुपचाप ले आऊँ और उन्हीं से इस बात को ठहराऊँ। गोसाईं महेन्दर गिर जिसकी यह सब करतूत है वह भी इन्हीं दोनों उजड़े हुए के मुट्ठी में है। अब भी जो मेरा कहा तुम्हारे ध्यान चढ़े तो गए हुए दिन फिर सकते हैं। पर तुम्हारे कुछ भावे नहीं हम क्या पड़ी बकती हैं। मैं इस पर बीड़ा उठाती हूँ'। बहुत दिनों पीछे रानी केतकी ने इस पर अच्छा कहा और मदनबान को अपने माँ बाप के पास भेजा और चिट्ठी अपने

हाथों से लिख भेजी जो आप से हो सके तो उस जोगी से ठहरा के आवे।

मदनबान रानी केतकी को अकेली छोड़कर राजा जगतपरकाश और रानी कामलता जिस पहाड़ पर बैठी थीं झट से आदेश करके आ खड़ी हुई और कहने लगी 'लीजे आप राज कीजे आप का घर नए सिर से बसा और अच्छे दिन आए। रानी केतकी का एक बाल भी बाँका नहीं हुआ। उन्हीं के हाथों की लिखी चिट्ठी लाई हूँ, आप पढ़ लीजिए। आगे जो जी चाहे सो कीजिये'। महाराज ने उस बघम्बर में से एक रोंगटा तोड़कर आग पर रख के फूँक दिया। बात की बात में गोसाईं महेंदगिर आ पहुँचा और जो कुछ नया सवाँग जोगी जोगिन का आया आँखों देखा। सबको छाती लगाया और कहा 'बघम्बर तो इसीलिए मैं सौंपा गया था कि जो तुम पर कुछ हो तो इसका एक बाल फूँक दीजियो। तुम्हारी यह गत हो गयी। अब तक क्या कर रहे थे और किन नींदों में सोते थे। पर तुम क्या करो? यह खिलाड़ी जो रूप चाहे सो दिखावे, जो नाच चाहे नचावे। भभूत लड़की को क्या देना था। हिरन हिरनी उदैभान और सूरजभान उसके बाप और लछमीबास उसकी माँ को मैंने किया था। फिर उन तीनों को जैसा का तैसा करना कोई बड़ी बात न थी। अच्छा, हुई सो हुई। अब उठ चलो। अपने राज पर बिराजो और ब्याह की ठाठ करो। अब तुम अपनी बेटी को समेटो। कुँवर उदैभान को मैंने अपना बेटा किया और उसको लेके मैं ब्याहने चढूँगा'। महाराज यह सुनते ही अपनी गद्दी पर आ

बैठ और उसी घडी यह कह दिया 'सारी छना और कोठों को गोटे से मढो और सोने और रूपे व सुनहरे रपहरे सेहरे सब झाड पहाडों पर बाँध दो और पेडो में मोती की लडियाँ बाँध ने और कह दो—चालीस दिन चालीस रात तक जिस घर में नाच आठ पहर न रहेगा उस घरवाले से में रूठ रहूँगा और यह जानूँगा यह मेरे दुख सुख का साथी नहीं। और छ महीने कोई चलने वाला कहीं न ठहरे रात दिन चला आय'। इस हेरफेर में वह राजा था। सब कहीं यही डौल था।

फिर महाराजा और महारानी और महेन्दर गिर मदनबान के साथ जहाँ रानी केतकी चुपचाप सुन खींचे हुए बैठी थी चुपचुपाते वहीं आन पहुँचे। गुरु जी रानी केतकी को अपनी गोद में लेकर कुँवर उदैभान का चढावा चढा दिया और कहा 'तुम अपने माँ बाप के साथ अपने घर सिधारो अब मैं बेटे उदैभान को लिये हुए आता हूँ'। गुरु जी गोसाईं जिनको दण्डौत है सो तो वह सिधारते हैं। आगे जो होगी सो कहने में आवेगी। यहाँ पर धूम धाम फैलाना अब ध्यान कीजिये। महाराज जगतपरकास ने अपने सारे देश में कह दिया 'यह पुकार दे जो यह न करेगा उसकी बुरी गति होवेगी। गाँव गाँव में अपने सामने छिपोले बना बना के सूहे कपडे उन पर लगा के गोट धनुष की और गोखरू रुपहले सुनहरे की किरनें और डाँक टाँक टाँक रक्खो और जितने बड, पीपल नये पुराने जहाँ जहाँ पर हों उन के फूल के सेहरे बडे बडे ऐसे जिसमें सिर से लगा पैर तक पहुँचें बाँधो।

चौतुका

पौदों ने रँगा के सूहे जोड़े पहने।
सब पाँव में डालियों ने तोड़े पहने॥

बूटे बूटे ने फूल फल के गहने पहने।
जो बहुत न थे तो थोड़े थोड़े पहने॥

जितने डहडहे और हरियावल फूल पात थे, सबने अपने हाथ में चहचही मेंहदी की सजावट की सजावट के साथ जितनी समावट में समा सके, कर लिए और जहाँ जहाँ नवल ब्याही दुल्हनें नन्हीं नन्हीं फलियाँ की ओर सुहागिनें नई नई कलियों के जोड़े पँखुड़ियों के पहने हुए थीं। सबने अपनी अपनी गोद सुहाग और प्यार के फूल और फलों से भरी और तीन बरस का पैसा सारे उस राजा के राजभर में जो लोग दिया करते थे, इस ढब से हो सकता था खेती बारी करके हल जोत के और कपड़ा लत्ता बेचकर सो सब उनको छोड़ दिया और कहा जो अपने अपने घरों में बनावट की ठाट करें। और जितने राजभर में कूएँ थे खँडसालों की खँडसालें उनमें उँडेल गईं और सारे बनों और पहाड़ तलियों में लाल पटों की झमझमाहट को रातों दिखाई देने लगीं। और जितनी झीलें थीं उनमें कुसुम और टेसू और हारसिंगार पड़ गया और केसर भी थोड़ी थोड़ी घोले में आ गई। फुनग से लगा जड़ तलक जितने झाड़ झड़ाड़ों में पत्ते और पत्ती बँधी थी उन पर रुपहरी सुनहरी डाँक गोंद लगा कर चिपका दिए और सभों को कह दिया जो सूही पगड़ी और सूहे बागे बिन कोई

किसी डौल किसी रूप से फिरे चले नहीं और जितने गवैये बजवैये भाँड भगतिए रहसधारी और सङ्गीत पर नाचने वाले थे सब को कह दिया जिस जिस गाँव में जहाँ हों अपने अपने ठिकानों से निकल कर अच्छे अच्छे बिछौने बिछाकर गाते नाचते कूदते रहा करें।

यहा की बात और चुहले जो कुछ हैं सो यहीं रहने दो अब आगे सुनो। जोगी महेन्दर और उसके नब्बे लाख अतीत ने सारे बन के बन छान मारे पर कहीं कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप का ठिकाना न लगा तब उन्होंने राजा इन्दर को चिट्ठी लिख भेजी। उस चिट्ठी में यह लिखा हुआ था—'इन तीनों जनों को हिरनी हिरन कर डाला था, अब उनको ढूँढता फिरता हूँ कहीं नहीं मिलते और मेरी जितनी सकत थी अपनी सी बहुत कर चुका हैं। अब मेरा मुँह से निकला कुँवर उदैभान मेरा बेटा मैं उसका बाप और ससुराल में सब ब्याह का ठाठ हो रहा है। अब मुझ पर बिपत्ती गाढ़ी पड़ी जो तुम से हो सके, करो।' राजा इन्दर चिट्ठी को देखते ही गुरु महेन्दर के देखने को सब इन्द्रासन समेट कर आ पहुँचे और कहा 'जैसा आपका बेटा वैसा मेरा बेटा। आपके साथ में सारे इन्द्रलोक को समेट कर कुँवर उदैभान को ब्याहने चढूँगा।' गोसाँई महेन्दर गिर ने राजा इन्दर से कहा 'हमारी आप की एक ही बात है पर कुछ ऐसा सुझाइये जिससे कुँवर हाथ आ जावे।' राजा इन्दर ने कहा 'जितने गवैए ०, उन सबको साथ लेकर हम और आप सारे

बनो मे फिरा करें कहीं न कहीं ठिकाना लग जायगा।' गुरु ने कहा 'अच्छा।'

एक रात राजा इन्दर और गोसाईं महेन्दर गिर निखरी हुई चादनी मे वैठे राग सुन रहे थे करोडो हिरन राग के ध्यान मे चौकडी भूल आस पास सर झुकाए खडे थे। इसी मे राजा इन्दर ने कहा 'इन सब हिरनों पर—मेरी सकत गुरु की भगत फुरे मन्त्र ईश्वरोवाचा—पढ के एक एक छींटा पानी का दो।' क्या जाने वह पानी कैसा था छीटों के साथ ही कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप तीनों जने हिरनों का रूप छोड कर जैसे थे वैसे हो गए। गोसाईं महेन्दर गिर और राजा इन्दर ने उन तीनों को गले लगाया और बडी आव भगत से अपने पास बैठाया और वही पानी घडा अपने लोगों को देकर वहाँ भेजवाया जहाँ सर मुँडवाते ही ओले पडे थे। राजा इन्दर के लोगों ने जो पानी के छींटे वही ईश्वरोवाच पढ के दिए तो जो मरे थे सब उठ खडे हुए और जो जो अधमुए भाग बचे थे, सब सिमट आए। राजा इन्दर और महेन्दर गिर कुँवर उदैभान और राजा सूरजभान और रानी लछमीदास को लेकर एक उडन-खटोले पर बैठकर बडी धूम धाम से उनको उनके राज पर बिठा कर ब्याह के ठाठ करने लगे। पसेरियन हीरे मोती उन सब पर से निछावर हुए। राजा सूरजभान और कुँवर उदैभान और रानी लछमीदास चितचाही असीस पाकर फूली न समाईं और अपने सारे राज को कह दिया 'जेवर भौंरे के मुँह खोल दो जिस जिस को जो जो उकत सूझे बोल दो।

आज य दिन का सा कौन सा होगा। हमारी आँखों की पुतलियों का जिस से चैन है उस लाडले इकलौते का ब्याह और हम तीनों का हिरना क रूप मे निकल फिर राज पर बैठना पहिले तो यह चाहिये, जिन जिन की बेटियाँ बिन ब्याहियाँ हों उन सब को उतना करदो जो अपने जिस चाव चोज से चाहे अपनी गुड़ियाँ सँवार के उठावें और जब तक जीती रहें सब की सब हमार यहाँ स खाया पकाया रींधा करें। और सब राज भर की बेटिया सदा सुहागिनें बनी रहें और सूहे राते जुट कभी कोई कुछ न पहना करें। और सोने रूपे के कवाड गगा जमुनी सब घरो में लग जाँय और सब कोठो के माथों पर कसर और चन्दन क टीर लगे हो। और जितन पहाड हमारे देस में हो उतने ही पहाड सोने रूपे क सामने खड़े हो जायँ और डांगो की चोटियाँ मोतियो की माँग से बिना माँगे ताँग भर जायँ और फलो क गहने और बन्धनवार से सब झाड पहाड लदे फँदे रहें और इस राज से लगा उस राज तक अधर में छत सी बाँध दो और चप्पा चप्पा कहीं ऐसा न रहे जहाँ भीड भड़का धूम धडका न हो जाय। फूल बहुत सारे बह जाय जो नदियाँ जैसे सचमुच फूल की बहनियाँ हैं यह समझा जाय। और यह डौल कर दो जिधर से दूल्हा को ब्याहने चड सब लाडली और हीरे और पुखराज की उमड में इधर और उधर कँवल की टट्टियाँ बन जायँ और क्यारियाँ सी हो जायँ जिनके बीचोबीच से हो निकलें और कोई डाँग और पहाड

तली का चढ़ाव उतार ऐसा दिखाई न दे जिसकी गोद पँखुरियों से भरी हुई न हो।

राजा इन्दर ने कह दिया, 'वह रंडियाँ चुलबुलियाँ जो अपने मद मे उड़ चलियाँ हैं उन से कह दो—सोलह सिंगार बाल गजमोती पिरो अपने अपने अचरज और अचम्भे के उड़न-खटोलो को इस राज से लेकर उस राज तक अधर मे छत सी बाँध दो। कुछ उस रूप से उड़ चलो जो उड़न-खटोलियो की क्यारियाँ और फुलवारियाँ सैकड़ो कोस तक हो जायँ और अधर ही अधर मिरदंग बीन जलतरंग मुँहचङ्ग घुँघुरू तबले घटताल और सैकड़ो इस ढब के अनोखे बाजे बजते आएँ और उन क्यारियों के बीच मे हीरे पुखराज अनबेध मोतियों के झाड़ और लालटेनो की भीड़भाड़ की झमझमाहट दिखाई दे और इन्हीं लालटेनो मे से हथफूल फूलझड़ियाँ जाही जुही कदम गेंदा चमेली इस ढब छूटने लगें जो देखने वालों की छातियों के किवाड़ खुल जाएँ और पटाखे जो उछल उछल फूटें उनमे से हँसती सुपारी और बोलती करौती ढल पड़े और जब हम सबको हँसी आवे तो चाहिए उस हँसी से मोतियों की लड़ियाँ झड़े जो सब के सब उनको चुन चुन कर राजे हो जायँ। डोमनियों के रूप मे सारंगियाँ छेड़ छेड़ सोहलें गाओ, दोनो हाथ हिला के उँगलियाँ नचाओ, जो किसी ने सुनी हो। वह ताव भाव व चाव दिखाओ, ठुड्डियाँ गिनगिनाओ, नाक भँव तान तान भाव बनाओ, कोई छुट कर रह न जावो। ऐसा चाव लाखों बरस मे जो जो राजा इन्दर ने अपने मुँह से निकाला था आँख

की झपक के साथ वही होने लगा। और जो कुछ उन दोनों महाराजों ने कह दिया था, सब कुछ उसी रूप से ठीक ठीक हो गया। जिस ब्याह की यह कुछ फैलावट और जमावट और रचावट ऊपर तले इस जमघटे के साथ होगी, और कुछ फैलावा क्या कुछ होगा, यही ध्यान कर लो।

जब कुँवर उदैभान को वे इस रूप से ब्याहने चढ़े और वह बाम्हन जो अँधेरी कोठरी में मुँदा हुआ था उसको भी साथ ले लिया और बहुत से हाथ जोड़े और कहा 'बाम्हन देवता हमारे कहने सुनने पर न जावो, तुम्हारी जो रीत चली हुई आई है बताते चलो'। एक उड़न-खटोले पर वह भी रीत बताने साथ हो लिया। राजा इन्दर और महेन्दरगिर ऐरावत हाथी पर भूलते झालते देखते भालते चले जाते थे। राजा सूरजभान दूल्हा के घोड़े के साथ माला जपता हुआ पैदल था। इतने में एक सन्नाटा हुआ। सब घबरा गए। उस सन्नाटे में जो वह ९० लाख अतीत थे सब जोगी से बने हुए सब माले मोतियों की लड़ियों के गले में डाले हुए और गातियाँ उसी ढब की बाँधे हुए मिरिगछालों और बघम्बरों पर आ ठहर गए। लोगों के जियों में जितनी उमंग छा रही थी वह चौगुनी पचगुनी हो गई। सुखपाल और चंडोल और रथों पर जितनी रानियाँ थीं महारानी लछमीदास के पीछे चली आनियाँ थीं। सब को गुदगुदियाँ सी होने लगीं। इसी में भरथरी का सवाँग आया। कहीं जोगी जतियाँ आ खड़े हुए। कहीं कहीं गोरख जागे कहीं मुछन्दर नाथ भगे। कहीं मच्छ कच्छ बराह

सन्मुख हुए। कहीं परसुराम, कहीं वामन रूप, कहीं हरनाकुस और नरसिंह, कहीं राम लछमन सीता समेत आई, कहीं रावन और लङ्का का बखेड़ा सारे का सारा सामने देखाई देने लगा। कहीं कन्हैया जी की जन्मअस्टमी होना और वसुदेव का गोकुल ले जाना और उनका बढ चलना, गाएँ चरानी और मुरली बजानी और गोपियों से धूम मचानी और राधिका-रहस और कुब्जा का बस कर लेना, कहीं करील की कुँजें, बसीबट, चीरघाट, वृन्दावन, सेवाकुञ्ज, बरसाने में रहना और कन्हैया से जो जो हुआ था सब का सब ज्यों का त्यों आँखों मे आना और द्वारिका जाना और वहा सोने का घर बनाना इधर विरिज को न आना और सोलह सौ गोपियों का तलमलाना सामने आ गया। उनमे से ऊधो का हाथ पकड कर एक गोपी क इस कहन ने सबको रुला दिया जो इस ढब से बोल क उनसे रुँधे हुए जी को खोले थी—

चौतुका

जब छाँडि करील की कुञ्जन को हरि द्वारिका जीउ माँ जाय बसे।
कुलधूत के धाम बनाये घने महराजन क महराज भए ॥
तज मोर मुकुट अरु कामरिया कछु औरहि नाते जोड लिए।
धरे रूप नए किये नेह नए अरु गइयाँ चरायनो भूल गए॥

कोई क्या कह सके, जितने घाट दोनों राज की नदियों में थ, पक्के चादी के थक्के से होकर लोगों को हक्का बक्का कर रहे थे।

निवाड़े, भौलिये, बजर, लचके, मोरपङ्खी, स्याम सुन्दर, रामसुन्दर और जितनी ढब की नावें थीं सनहरी रुपहरी, सजी सजाई कसी कसाई सौ सौ लचके खातियाँ आतियाँ जातियाँ ठहरातियाँ फिरातियाँ थीं। उन सभी पर खचाखच कचनियाँ, राम-जनियाँ, डोमनियाँ भरी हुईं अपने अपने करतबों में नाचती गाती बजाती कूदती फाँदती धूमें मचातियाँ अँगड़ातियाँ जँभातियाँ उँगुलियाँ नचातियाँ और ढुली पड़तियाँ थीं। और कोई नाव ऐसी न थी जो सोने रूप के पत्तरों से मढ़ी हुई और सवारी से लदी हुई न हो। और बहुत सी नावों पर हिंडोले भी उसी ढब के थे। उन पर गायनें बैठी झूलती हुई सोहनी, केदारा, बागेसरी, कान्हड़ो में गा रही थीं। दल बादल ऐसे नवाड़ों के सब झीलों में छा रहे थे।

इस धूम धाम के साथ कुँवर उदैभान सेहरा बाँधे दुल्हन के घर तक आ पहुँचा और जो रीतें उनके घराने में चली आई थीं होने लगियाँ।

उस घड़ी मदनबान को रानी केतकी के बादले का जूड़ा और भीनाभीनापन और अँखड़ियों का लजाना और बिखरा बिखरा जाना भला लग गया तो रानी केतकी की बास सूँघने लगी और अपनी आँखों को ऐसा कर लिया जैसे कोई ऊँघने लगता है। सिरे से लगी पाँव तक वारी फेरी होके तलवे सुहलाने लगी। तब रानी केतकी झट एक धीमी सी सिसकी लचके के साथ ले उठी। मदनबान बोली 'मेरे हाथ के ठोके से वही पाँव

का छाला दुख गया होगा जो हिरनों को ढूँढने में पड़ गया था।' इसी दुख की चुटकी से रानी केतकी ने मसोस कर कहा 'काँटा अड़ा तो अड़ा, छाला पड़ा तो पड़ा, पर निगोड़ी तू क्यों मेरी पनढाला हुई'।

दूल्हा उदैभान सिंहासन पर बैठा और इधर उधर राजा इन्दर और जोगी महेन्दर गिर जम गए और दूल्हा का बाप अपने बेटे के पीछे माला लिए कुछ गुनगुनाने लगा। और नाच लगा होने और अधर में जो उड़नखटोले राजा इन्दर के अखाड़े के थे सब उसी रूप से छत बाँधे हुए थिरका किए दोनों महारानियाँ समधिन बन के आपस में मिलियाँ चलियाँ और देखने दाखने को कोठों पर चन्दन के किवाड़ों के आड़ तले आ बैठियाँ। सवाँग संगीत भँड़ताल रहस हँसी होने लगी। जितनी राग रागनियाँ थीं—ईमन कल्यान, सुद्ध कल्यान, झिंझोटी, कान्हड़ा, खम्माच, सोहनी, परज, बिहाग, सोरठ, कालंगड़ा, भैरवी, पट-ललित, भैरों रूप पकड़े हुए सचमुच के जैसे गाने वाले होते हैं उसी रूप में अपने अपने समय पर गाने लगे और गाने लगियाँ। उस नाच का जो ताव भाव रचावट के साथ हो, किसका मुँह जो कह सके। जितने महाराजा जगत परकास के सुख चैन के घर थे—माधो बिलास, रसधाम, कृष्णनिवास, मच्छीभवन, चन्द्रभवन—सबके सब लप्पे से लपेटे और सच्चे मोतियों की झालरें अपने अपने गाठ में समेटे हुए एक भेष के साथ झूम रहे थे।

बीचों बीच उन सब घरों के एक आरसी धाम बना था

जिसकी छत और किवाड़ और आंगन में आरसी छुट कहीं लकड़ी ईंट पत्थर की पुट एक उँगली के पोर बराबर न लगी थी। चांदनी का जोड़ा पहन जब रात घड़ी एक रह गई थी तब रानी केतकी सी दुल्हन को उसी आरसीभवन में बैठाकर दूल्हा को बुला भेजा। कुँवर उदैभान कन्हैया सा बना हुआ सिर पर मुकुट धरे सेहरा बांधे उसी तड़ावे और जमघट के साथ चांद सा मुखड़ा लिए आ पहुँचा, जिस जिस ढब से बाम्हन और पंडित कहते गये और जो जो महाराजों में रीतें होती चली आई थीं उसी डौल से उसी रूप से भँवरी गठ जोड़ा हो लिया।

यह उड़नखटोलेवालियां जो अधर में छत सी बांधे हुए थिरक रही थीं, भर भर झोलियाँ और मूठियाँ हीरे और मोतियाँ से निछावर करने के लिये उतर आईं और उड़नखटोले अधर में ज्यों के त्यों छत बांधे हुए खड़े रहे। और वह दूल्हा दूल्हन पर से सात सात फेरे वारी फेरे होन में मिस गइया। सभों को एक चुपकी सी लग गई। राजा इन्दर ने दुल्हन की मुँह दिखाई में एक हीरे का एक डाल छपरखट और एक पेड़ी पुखराज की दी और एक पारिजात का पौधा जिसमे जो फल चाहो सो मिले दूल्हा दूल्हन के सामने लगा दिया। और एक कामधेनु गाय की पठिया बछिया भी उसके पीछे बांध दी और इकीस लौंडिया उन्हीं उड़नखटोले-वालियों में से चुन के अच्छी से अच्छी सुथरी से सुथरी गाती बजातियां सीतियां पिरोतियां और सुघर से सुघर सौंपी और उन्हें कह दिया 'रानीकेतकी छुट उनके दूल्हा से कुछ बात चीत न करना नहीं तो सब की सब पत्थर की मूरतें हो जाओगी और

अपना किया पाओगी'। और गोसाईं महेन्दर गिर ने बावन तोले पाव रत्ती जो उसकी इक्कीस चुटकी आगे रक्खी और कही "यह भी एक खेल है जब चाहिए बहुत सा ताँबा गला के एक इतनी सी चुटकी छोड़ दीजे कंचन हो जायगा" और जोगीजी ने सभों से यह कह दिया 'जो लोग उनके ब्याह में जागे हैं उनके घरों में चालीस दिन चालीस रात सोने की नदियों के रूप में मेंह बरसे। जब तक जिएँ किसी बात की फिर न तरसें।' नौ लाख निन्नानवे गाएँ सोने रूप सिंगौरियों की जड़ाऊ गहना पहने हुए घुंघरू छमछमातियाँ महंतों को दान हुईं। और सात बरस का पैसा सारे राज को छोड़ दिया गया। बाइस सौ हाथी और छत्तीस सौ ऊँट रुपयों के तोड़े लादे हुए लुटा दिए। कोई उस भीड़भाड़ में दोनों राज का रहने वाला ऐसा न रहा जिसको घोड़ा जोड़ा रुपयों का तोड़ा जड़ाऊ कपड़ों के जोड़े न मिले हों। और मदनबान छुट दूल्हा दूल्हन पास किसी का हियाव न था जो बिन बुलाए चली जाय बिन बुलाए दाड़ी आए तो वही आए और हँसाय तो वही हँसाए। रानी केतकी के छेड़ने के लिए उनके कुँवर उदैभान को कुँवर क्योड़ाजी कहके पुकारती थी और ऐसी बातों को सौ सौ रूप से सँवारती थी।

सदलमिश्र (समय लगभग १८२४-१६०५)

सदलमिश्र आरे के रहने वाले शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। इनके एक पूर्वज शुकदेव मिश्र आरा व एक ग्राम में आकर बसे थे। किन्तु अपने सजातीयों के अत्याचार के कारण उन्हे वह ग्राम छोड कर भदवर ग्राममें जाना पडा।

उस ग्राम में इनकी बडी प्रतिष्ठा थी। प० शुकदेव के पुत्र थ लक्ष्मण मिश्र। लक्ष्मण के पुत्र नदमणि के ज्येष्ठ पुत्र सदलमिश्र थे। प० सदल मिश्र सस्कृत के अच्छे प डित थ। इसी विद्वत्ता के कारण इन्हें फोर्ट विलीयम कालेज मे नियुक्त किया गया और वहा के अध्यक्ष विलक्रिस्ट साहेब के अच्छे कृपापात्र बन गये। उन्हीं के आदेश से इन्होंने 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की है।

प० सदलमिश्र प० लल्लूलाल के समकालीन थ और उन्हींके साथ फोर्ट विलियम कालेज में थ। तथापि इनकी भाषा और उनकी भाषा में बहुत अन्तर है। लल्लूलाल की भाषा पर ब्रज-भाषा का काफी पुट चढी है और अस्थिर और अपरिमार्जित है। उन्होंने पद्यों की तरह तुक मिलाने की ओर ध्यान अधिक दिया है। पर मिश्र जी की भाषा बोलचाल मे आने वाली खडीबोली है, यद्यपि कहीं कहीं उसमें ब्रज और पूरबी हिन्दी की झलक आ जाती है। भाषा के लिहाज से इनका स्थान मु० ईंशाअल्ला खा के बाद और लल्लूलाल से पूर्व है।

तुरन्त द्वारपालों ने रघु से जा कहा कि महाराज ! एक कोई ऋषि महातपस्वी बाहर आय खडे हैं।

सुनत ही व मन्त्रियों को साथ ले दौड़ हुए आए। आवत ही मुनि जी के चरणों पर गिर पडे और हाथ पकड़ भीतर ले जा अपने सिंहासन पर बैठाय कुशल क्षेम पूछ गङ्गाजल से ऋषि के पाँव पखार चरणोदक लिए। और जैसा कुछ चाहिए, वैसा आदर मान कर हाथ जोड कहने लगे कि महाराज ! बडा अनुग्रह किया जो आप दर्शन दिया। अब हमारे सब किया थो जन्म सुफल हुआ। चाहिए कि आज से मेरे राज में सब भला दिन हुवा करेगा, क्योंकि जहाँ तुम से ऋषियों की दया है, वहाँ सदा ही आनन्द निवास होता है। अब कहिए किस कारण से यहाँ आगमन हुआ, सो इस दास को सुनाइए।

ऐसी नृप की मीठी मीठी बातों से हर्षित हो बार बार आसीस कह उद्दालक बोले कि धन्य है तुम्हारी माता औ पिता कि जिन को तुमसा धर्मात्मा पुत्र हुआ। और स्वर्गलोक में देवनों की कन्या दिन रात घर घर तुम्हारा गुण गाती हैं। तुम्हें बड़ा दानी जान कन्या याचने को मैं आया हूँ। धर्मावतार ! वेद की विधि से हमको उसे दीजिए तो लाख गोदान किए का पावोगे।

यह बात सुनके नरेश ने कहा, कि स्वामी ! अब बहु ....

थोडा द्रव्य जितना चाहिए सो हमसे सब लीजिए, पर कन्या तो मेरे घर में नहीं जो आपको दूँ।

मुनि बोले कि सत्य, वह पतिव्रता कन्या बिना ब्याही हुई तुम्हारे मन्दिर में नहीं, पर कहीं होगी। कुल बढाने के लिए मुझ को दीजिए, कोटिन्ह अश्वमेध यज्ञ का पुण्य सहज मे होवेगा।

ऋषि की आश्चर्य्य बात सुन शोक से आकुल हो सकुचा कर राजा कहन लगे कि महाराज! प्राण से भी अधिक प्यारी एक पुत्री हमको थी सही, पर कुछ दोष सुनि मारे क्रोध से उस घर से मैंन निकाल दिया। सो आपक योग्य नहीं। और इधर जाने कि अब जीवती है कि मर गई।

तब उद्दालक मुनि पिछला समाचार भूपति को सुना दिया।

सब व सुनकर बार बार पछिता पछिता रो रो कहन लगे कि हाय! हाय! यह दवचरित्र मैंने कुछ नहीं जाना। हम सा पापी अधर्म्मी दूसरा कोई नहीं जो बिना अपराध बेटी को बनवास दिया।

ऐसे कहत हुए वहाँ से तुरन्त हर्षित हो उठे। जो भीतर जा मुनि न जो आश्चर्य्य बात कही थी, सो पहिले रानी को सब सुनाई। वह भी मोह से व्याकुल हो पुकार पुकार रोन लगी औ गिडगिडा कहन कि महाराज! जो यह सत्य है तो अब ही लोग भेज लडके समेत झट उसको बुला ही लीजिए, क्योंकि अब मारे शोक के मरी छाती फटती है। कब मैं सुन्दर बालक सहित चन्द्रवती के मुँह, कि जो बन के रहन से भोर के चन्द्रमा सा मलीन हुआ होगा, देखोंगी। देखो यह कर्म्म का खेल, कहाँ इहाँ

नाना भाँति भोग विलास मे वो फूलन्ह के बिछौने पर मे सुख मे दिन रात जिसके बीतते थे, सो अब जगल मे कन्द मूल खा काटे कुश पर सो कर स्यारो के चहुदिशि डरावन शब्द सुनि कैसे विपति को काटती होगी।

राजा बोले कि माता पिता से प्राणी का एक जन्म ही तो होता है। और सुख दुख जो पूछो तो जब जैसा बदा तब तैसा, क्या राजा प्रजा, सब ही बड़े छोटे को होता है।

इतने में जहाँ से सखी सहेली और जात भाइयो की स्त्री सब दौड़ी हुई आई, समाचार सुनि बहुत जुड़ाई, मगन हो हो नाचने गाने बजाने लगीं, वो अपने अपने देह मे गहना उतार उतार सेवकों को देने लगी और अगणित रुपैया नाज वस्त्र राजा रानी ने ब्राह्मणो को बोला बोला दान दिया। आनन्द बधावा बाजने लगा। हर्षित हो नरेश ने वहाँ से सभा मे जा ऋषि से कहा कि महाप्रभु! आपने मेरा बड़ा कलंक मिटाया है। इस आनन्द का कुछ पारावार नहीं। अब निचिन्त हो इहाँ बिराजिए, कन्या मैंगा आपको मैं दूँगा।

ऐसे कह अमृत पदार्थ भोजन करा अति आदर से मुनि को टिकाया, वो तुरन्त सेवकों के सहित पालकी भेज नाती समेत बेटी को बन से मँगा लिया। गये लगा सब रनिवास भेंट किया। बालक गोदी में ले सतारी लड़की को घर मे बैठा रो रो बन की बात पूछने लगी। भाई गोतिया हित मीत नगर के लोग दरसने को आए। भीतर बाहर नृप के मंदिर में सारे भीड़ के उथल पथल हो गया। तब भूप ने पण्डितो को बुला

शास्त्र के ज्ञाता, धर्म्म अधर्म्म के विचार और तेज में इनने हैं कि यम के समान ही हो। और प्राणियों के सकल कर्म्म के जाननि-हार बार बार मैं तुमको प्रणाम करता हूँ। पुण्य पाप के कारण से सुख दुख के जो जो स्थान इस नगर में हैं सो इनने की मेरी इच्छा है। कृपानिधान! दया करके हमारे मनोरथ को पुराओ।

वैशम्पायन कहते हैं, इस प्रकार से विनती किए पर चित्रगुप्त की आज्ञा ले दूतों ने नासिकेत को लेजा स्वर्ग नरक, जहाँ पुण्य पाप के फल पाते हैं, दिखा सुना प्रसन्न कर फिर चित्रगुप्त को कहते हुए धर्म्मराज के पास ले आय खड़ा कर दिया।

महातेजस्वी व समर्थ जान उनके आवते ही व उठ खड़े भए और आसन दे बैठाय प्रीति कर पूछने लगे कि कहो नासिकेत ऋषि! चित्रगुप्त समेत सारे पुर को नाना भाँति के लोग जो अपने अपने कर्म्म का फल भोगते हैं, देख आए? श्रद्धा पूरी भई?

वे बोले महाराज! तुम्हारे प्रसाद से मैं स्थान से मैं हो आया। अब माता पिता हमारे शोक से कलपते होंगे, आज्ञा करो तो उनका दर्शन करूँ।

तब इतना वचन सुनि धर्म्मराज निपट हर्षित भए, वो यह बर दे उनको अपने यहाँ से विदा किया कि आज से तुम अपने योग के बल से सब दुख से छूट और मृत्यु को जीत युवा स्वरूप हो सदा आनन्दविहार में मगन रहो। और जो तुम्हारे कुल में होगा सो हमारा कबहीं न मुँह देखेगा।

इस प्रकार से यह वर पाया नासिकेत मुनि मन के वेग समान से चले, सो पल भर में जहां माता पिता मारे मोह से दुखरा कर मरन योग्य हो रहे थ, वहां अचानक जा पहुँचे, वो जाते ही दोनों की प्रदक्षिणा की, वो चरण छू प्रणाम कर सन्मुख जा बैठे।

[पत्नी] सहित उद्दालक ऋषि पुत्र को कुशल से देख बहुत हर्षित भये वो तुरन्त गोदी में बैठा अति आनन्द से रो रो बार बार मुँह चूमने लगे और कहने लगे कि नासिकेत! आज हमारा जन्म साफ्ल्य हुआ। हम समान कोई भी दुराचारी पापी संसार में कौन होगा जो बिना अपराध शाप दे तुमको संकट में डाला। धन्य हो पुत्र, कि इसी देह से यमकी पुरी को देख ज्यों के त्यों फिर चले आए। जग मे एक से एक सिद्ध हुए और हैं, पर मैं जानता हूँ कि तुम्हारे गुण वो तेज को कोई दशांश भी नहीं पा सकता है। कहो कैसे धर्मराज का लोक व नगर है। कैसा यम का रूप, किस प्रकार की बाट कि जिससे इतना शीघ्र गए वो आए? क्या खाने पीने को पाया? किस रीति से बात चीत की? और जो कुछ अचरज देखा सुना हो सो हमसे कहो कि सन्देह मिटे, वो जो, करने को होय सो मैं करूँ।

नासिकेत बोले पिता! आपके पुण्य प्रताप से यम के मन्दिर हम गए। सब के सहारकर निहार दूतसहित यम-राज, पुण्य पाप के लिखने वाले चित्रगुप्त और भाँति भाँति के देवता अनगणित मैंने देखे। बड़ी स्तुति से रिझा कर यम से यह

वर पाया कि इसी देह से जाओ, अब तुम्हारा जन्म मरण न होवेगा और युवा वयस सब दिन सुख में भरे पुरे रहोगे।

वैशम्पायन कहते हैं, इतने में नासिकेत धर्मराज के पुर से हो आया, यह सुनि ऋषि लोग बहुत चकित हो अपने अपने आश्रम में जिस भाँति से तप करते थे, उसी प्रकार से यमलोक के समाचार पूछने के लिए चल खड़े भए। कितने एक तो नीचे माथे ऊपर पाँव किए और कितने एक ही चरण से खड़े, कोई दोनों, कोई एक ही हाथ उठाए, किसी को देखो तो मौन ही मन किए, कोई सूखे पत्ते ही खा, कोई निराहारी हुए, बहुतेरे ससार सागर पार होने को योग ही मे मगन दिगम्बर वेष बनाए, कठिन से कठिन तपस्या मे मन लगाए, जहाँ पिता के समीप नासिकेत बैठे थे वहाँ आन पहुँचे।

देखते ही वे हर्षित हो उठ खड़े भए वो प्रणाम कर मिल भेंट, कुशल क्षेम पूछ, आसन दे एक एक को अलग अलग बैठा, पाँव धुला, आचमन करा, अक्षत चन्दन फूल ले सबों को पूजने लगे।

तब समय जान ऋषि लोग बोल उठे कि नासिकेत! हम तुमसे अति प्रसन्न भए। शिष्टाचार तो जैसा कुछ चाहिये वैसा हो चुका वो होता रहेगा, अब यमलोक की बात सुनावो। कैसी वह पुरी है कि जहाँ सदा आप धर्मराज विराजते रहते हैं? कैसे यम के दूत हैं? क्या वहाँ की रीति रहन ज्ञान तपस्या वो कैसी वहाँ वैतरणी नदी है? और यहाँ जो करते सो वहाँ भोगते हैं? किस करम के फेर से यम के कोप में जा पड़ते

है ? कैसा उनका दूत व कैसे चित्रगुप्त हैं जो प्राणियों के धर्म्म अधर्म्म लिख धर्म्मराज को जनाते हैं ? पास मे उनके कौन कौन मुनि लोग रहते हैं ? सो सब कृपा कर कहो कि जिससे अति मनुष्य हो तुम्हारे गुणों को गावें।

उनकी इतनी बात सुनि बीच मे बैठ नासिकेत मुनि कहने लगे कि जितने तुम साधु सन्त हो सो अब सावधान हो सुनो। ऐसी आश्चर्य यह कथा है कि जिसके श्रवण से रोमांच होते हैं।



राजा शिवप्रसाद (संवत् १८८०—सन् १८६५)

राजा शिवप्रसाद का सम्बन्ध जगतसेठ के राजवंश से है। आप के पूर्वज दिल्ली में जौहरी का व्यवसाय करते थे। आपके पितामह काशी में बसे थे। वहीं पर राजा साहिब का जन्म माघ सुदी द्वितीया, संवत् १८८० को हुआ था। आपके पिता का नाम बाबू गोपीचन्द था। आप उर्दू, फारसी, हिन्दी और संस्कृत जानते थे। पीछे आपने अंग्रेजी में भी अच्छी योग्यता पा ली थी।

शिक्षा प्राप्त करने पर आप भरतपुर दरबार में नौकर हुए और वहाँ के वकील होकर दरबार की बड़ी सेवा की। सन् १८४५ के अंग्रेज और सिक्खों के युद्ध में आपने अंग्रेजी राज्य की सहायता की थी।

सन् १८१३ में आप शिक्षाविभाग के इंसपेक्टर नियत हो गये। इस पद पर रह कर आपने हिन्दी की अच्छी सेवा की। आपने बाल-पाठ्य पुस्तकें कुछ खुद लिखीं और कुछ विद्वानों से लिखवाईं।

आप ही के प्रभाव से उर्दूवालों के विरोध होते भी हिन्दी को शिक्षा-विभाग में स्थान मिला। हिन्दी में स्कूल शिक्षा की पाठ्य पुस्तकों का अभाव था। उसको दूर करने के लिये आपने कोई ३५ पुस्तकें लिखीं।

श्रीहरिश्चन्द्र जी आप को अपना विद्यागुरु कहते थे। इन सेवाओं के उपलक्ष्य में आपको सन् १८७२ में सी० एस० आई० की और सन् १८८७ में 'राजा' की उपाधि [illegible]। आपका देहान्त १३ मई, सन् १८९५ में हुआ।

राजा भोज का सपना

वह कौनसा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी महाराजा भोज का नाम न सुना हो। उसकी महिमा और कीर्त्ति तो सारे जगत् में व्याप रही है। बड़े बड़े महीपाल उसका नाम सुनते ही काँप उठते और बड़े बड़े भूपति उसके पाँव पर अपना सिर नवाते, सेना उसकी समुद्र की तरंगों का नमूना और खजाना उसका सोने चाँदी और रत्नों की खान से भी दूना। उसके दान ने राजा कर्ण को लोगों के जी से भुलाया और उसके न्याय ने विक्रम को भी लजाया। कोई उसके राज्य भर में भूखा न सोता और न कोई उघाड़ा रहने पाता। जो सत्तू माँगने आता उसे मोतीचूर मिलता और गजी चाहता उसे मलमल दी जाती। पैसे की जगह लोगों को अशर्फियाँ बाँटता और मेह की तरह भिखारियों पर मोती बरसाता। एक एक श्लोक के लिये लाखों देता और ब्राह्मणों को षट्रस भोजन कराके तब आप खाने को बैठता, तीर्थ-यात्रा स्नान, दान और व्रत-उपवास में सदा तत्पर रहता। उसने बड़े बड़े चान्द्रायण किये थे और बड़े बड़े जंगल पहाड़ छान डाले थे।

एक दिन शरद ऋतु में सन्ध्या के समय फुलवाड़ी के बीच स्वच्छ पानी के कुण्ड के तीर जिसमें कुमुद और कमलों के बीच जलपक्षी किलोलें कर रहे थे, रत्नजटित सिंहासन पर कोमल तकिये के सहारे स्वस्थचित्त बैठा हुआ वह महलों की सुनहरी कलसियाँ लगी हुई संगमरमर की गुमजियों के पीछे से उदय होता हुआ पूर्णिमा का चन्द्रमा देख रहा था और निर्जन एकान्त होने के कारण मन ही मन में सोचता था कि अहो! मैंने अपने

चौपाई

इतना दिन कहो कहाँ लगाए । तंं कारण बहु दुख पाए ॥
अग्निहोत्र वह यज्ञ हमारा । तुम बिन गया अकारथ सारा ॥

पुत्र करत है सुख पाने को, नहीं तो निपुत्र होना अच्छा । अब ही में पिता माता को दुःख देने लगा, न जाने आगे क्या करेगा। देखो अग्निहोत्र से ब्रह्मा आदि देवता और पितर सब सन्तुष्ट होते हैं, सो हमसे कुछ हो सका नहीं।

पिता की बात सुनि नासिकेत बोले कि अग्निहोत्र कर्म्म केवल संसार के बन्धन के लिये है, मेरे जानने में तो योग समान कोई दूसरी क्रिया मुक्तिदायक नहीं, कि जिसको ब्रह्मा आदि देवता सब भी मानते रहते हैं।

उद्दालक बोले वेद पढ़ि अग्निहोत्र करके करोड़न्ह बरस सुरपुर में नाना भोगविलास करते हैं। योग से कहो क्या होना है?

नासिकेत ने कहा वेद पढ़ि अग्निहोत्र करने से बार बार संसार में आते जाते हैं। योग साधने से इस देह से मुक्ति हो आनन्द विहार करते हैं।

यह समाचार वैशम्पायन मुनि राजा जनमेजय से कहते हैं कि इस प्रकार पुत्र को बरा बर उत्तरदायक जान उद्दालक ऋषि ने शाप दिया कि जाव, अब ही तुम यमलोक सिधारो। अब इहाँ तुम्हारे रहने से हम प्रसन्न नहीं। पहिले तो वे डरावने शाप से लगे काँपने, फिर धीरज कर योग के बल से तुरन्त यम के निकट चल खड़े भये।

सुनते ही आस पास के मुनि सब हाय हाय करते दौड़ आए। सिर में जटा, अङ्ग में भभूत, पेड़ के छिलके का लंगोट बाँधे, मृग का चर्म ओढ़े, छोटा सा लड़का जान, मीठी मीठी बात कहते दया कर बहुत पछताने लगे।

पाँव पकड़ कर मतारी रोने कलपने लगी। तब उद्दालक मुनि मोह से व्याकुल होकर कहने लगे क्यों पुत्र! हमको निसराए चले जाते हो। हम समान कुटिल कठोर निर्दयी दूसरा कौन जग में होगा जो तुमको शाप दे। क्योंकर पुत्र उस पुरी में जावोगे कि जहाँ राजा कहिये तो यम है, वो महाभयावनी वैतरनी नदी बहती है, पाट में कितने एक दूर तक सदा अग्नि ऐसी बरसती रहती है कि जहाँ पापी सब जा जा जलते हैं।

नासिकेत ने कहा पिता! कुछ खेद मत करो, आपके प्रताप से यमराज को देख शीघ्र मैं चला आऊँगा। तुम से पिता की बात जो सदा सत्य होती आई है, सो मैं झुठाने नहीं सकता हूँ। देखिए, सत्य ही से चन्द्रमा सूर्य्य नित्य भ्रमते हैं। सत्य ही स्वर्ग में है, नहीं तो बिना उसके नरक भोग होता है। इसलिये यम की पुरी को देखूँगा। पिता! मन को आकुल मत करो। इतना कह माता सहित पिता वो ऋषि को प्रणाम कर झट वहाँ से अन्तर्धान हो शिव का मन्त्र जपते वो ब्रह्मा का ध्यान करते चले, और बड़े सिद्ध थे इस कारण पल भर में यम की वह सभा में, कि जहाँ अत्री आदि अनेक ऋषि लोग अपनी अपनी पोथी खोल न्याय विचार यमराज से कहते थे, जा पहुँचे।

चौपाई

शिव स्वरूप अति सुन्दर बालक। निपट छोट दुख सुखदायक॥
जटा मुकुट वो भस्म लगाए। जानहिं सकल सभा [मन] भाए॥

तब सिर नवाय प्रणाम करि हाथ जोर लगे धर्म्मराज की स्तुति करने।

वैशम्पायन मुनि राजा जन्मेजय से कहत हैं, सूर्य्य समान तेजस्वी नचिकेत मुनि को, जिनके जाने से सभा शोभने लगी, देखते ही धर्म्मराज हर्षित हो तुरन्त उठ खड़े भए। आदर मानकर निकट अपने आसन पर ऋषि को बैठाया वो प्यार से समाचार पूछन लगे।

चौपाई

बालहिपन में बड़ी सियाई। कहो मुनीश कैस यह पाई।
धन्य पिता जिनके तुम भए। तुम्हें देख पातक सब गए॥
कारण कौन यहाँ तुम आए। बार बार मेरे गुण गाए॥
अमृत वाणी बहुत सुनाई। जो कहत सोहावनि अति सुखदाई॥

इतनी यम की बातें सुन नासिकेत ने कहा दीनदयाल! अपनी भूल कहाँ तक मैं आपको सुनाऊँ। जब कुमति आ घेरती है तब कैसहू कोई ज्ञानी होय, ज्ञान ठिकाने में नहीं रहता। एक तो पहिले आज्ञा में चूक ही थे, फिर ज्ञान की चर्चा में ढिठाई कर पिता को बराबर उत्तर दिया। इस अपराध से झट उनके मुख से यह बात निकल गई कि जा, अब ही यमपुरी को देख, तू हमारे साथ रहने योग्य नहीं। सो महाराज! पिता का वचन

सत्य करने के लिए तुम्हारे समीप आया हूँ। जैसी कुछ आज्ञा होए सो मैं करूँ।

हँस कर यम बोले कि महाप्रभु! तुम समान मुनि को, कि जो अब ही ऐसा योग में मगन हो संसार की माया मोह त्याग जो चाहे सो करे, जहाँ इच्छा आव, तहाँ चला जाय, देख कर अति आनन्द हमको होता है। कहो क्या मन में है सो वर मुझसे माँगो।

नासिकेत बोले महाराज! ऐसी दया करते हो तो चित्रगुप्त समेत अपनी सारी पुरी वो धर्म्मात्मा लोग जहाँ पुण्य का अच्छा फल वो पापी जन नरक भोगते हैं, सो सब स्थान दिखाओ। यही मेरे मन की लालसा है।

तुरन्त उनने दूतों को बुलाके कहा कि यह ऋषि बडे सत्य-वादी मर्त्यलोक से पिता के शाप पाय यहाँ आए हैं। जाव, सगरे पुर का दर्शन इन्हें करा लावो, कि जिसमे अपना मनोरथ पूरण कर हर्षित हों।

प्रभु की इतनी आज्ञा सुनि दूत सब वोहीं उनको चित्रगुप्त के पास ले गए और कहा कि धर्म्मावतार। यमराज ने हमको भेजा है। बाप का वचन रखने के लिए ये महापुरुष यहाँ आए जो कुछ कहते हैं सावधान होकर सुनिए।

किंकरों की यह बात सुनि चित्रगुप्त ने मुनि से पूछा कि महाराज! तुम्हारे दर्शन से निपट हम सन्तुष्ट भए, कहो क्या अभिलाष है, सो मैं पूरण करूँ।

नासिकेत बोले, ईश्वर ने अति उत्तम तुमको बनाया है. भरु

शास्त्र के ज्ञाता, धर्म्म अधर्म्म के विचार और तेज में दरसते हैं कि यम के समान ही हो। और प्राणियों के सरल धर्म्म के जाननिहार बार बार मैं तुमको प्रणाम करता हूँ। पुण्य पाप के कारण से सुख दुख के जो जो स्थान इस नगर में हैं सो देखने की मेरी इच्छा है। कृपानिधान! दया करके हमारे मनोरथ को पुराओ।

वैशम्पायन कहते हैं, इस प्रकार से बिनती किए पर चित्रगुप्त की आज्ञा ले दूतों ने नासिकेत को लेजा स्वर्ग नरक, जहाँ पुण्य पाप के फल पाते हैं, दिखा सुना प्रसन्न कर फिर चित्रगुप्त के रहते हुए धर्म्मराज के पास ले आय खड़ा कर दिया।

महातेजस्वी वे सम्राट जान उनके आवते ही वे उठ खड़े भए और आसन दे बैठाय प्रीति कर पूछने लगे कि कहो नासिकेत ऋषि! चित्रगुप्त समेत सारे पुर को नाना भाँति के लोग जो अपने अपने कर्म्म का फल भोगते हैं, देख आए? श्रद्धा पूरी भई?

वे बोले महाराज! तुम्हारे प्रसाद से मन स्थान से मैं हाँ आया। अब माता पिता हमारे शोक से कलपते होंगे, आज्ञा करो तो उनका दर्शन करूँ।

तब इतना वचन सुनि धर्म्मराज निपट हर्षित भए, वो यह वर दे उनको अपने यहाँ से बिदा किया कि आज से तुम अपने योग के बल से सब दुःख से छूट और मृत्यु को जीत युवा स्वरूप हो सदा आनन्दविहार में मगन रहो। और जो तुम्हारे कुल में होगा सो हमारा कहीं न मुँह देखेगा।

इस प्रकार से यह वर पाया नासिकेत मुनि मन व वेग समान से चले, सो पल भर में जहां माता पिता मारे मोह से दुखरा कर मरने योग्य हो रहे थे, वहां अचानक जा पहुँचे, वो जाते ही दोनों की प्रदक्षिणा की, वो चरण छू प्रणाम कर सन्मुख जा बैठे।

[पत्नी] सहित उद्दालक ऋषि पुत्र को कुशल से देख बहुत हर्षित भये वो तुरन्त गोदी में बैठा अति आनन्द से रो रो बार बार मुँह चूमने लगे और कहने लगे कि नासिकेत ! आज हमारा जन्म सार्थ हुआ। हम समान क्रोधी दुराचारी पापी संसार में कौन होगा जो बिना अपराध शाप दे तुमको संकट में डाला। धन्य हो पुत्र, कि इसी देह से यमकी पुरी को देख ज्यों के त्यों फिर चले आए। जग में एक से एक सिद्ध हुए और हैं, पर मैं जानता हूँ कि तुम्हारे गुण वो तेज को कोई दशांश भी नहीं पा सकता है। कहो कैसे धर्मराज का लोक व नगर है। कैसा यम का रूप, किस प्रकार की बाट कि जिससे इतना शीघ्र गए वो आए ? क्या खाने पीने को पाया ? किस रीति से मान योग की ? और जो कुछ अचरज देखा सुना हो सो हमसे कहो कि सन्देह मिटे, वो जो, करने को होय सो मैं करूँ।

नासिकेत बोले पिता ! आपके पुण्य प्रताप से यम के मन्दिर हम गए। सब के संहारकर विहार दूतसहित यम-राज, पुण्य पाप के लिखने वाले चित्रगुप्त और भाँति भाँति के अनगणित मैंने देखे। बड़ी स्तुति से रिझा कर यम से यह

वर पाया कि इसी देह से जाओ, अब तुम्हारा जन्म मरण न होवेगा और युग युग लगम मन चिन्त सुख में भरे पुरे रहोगे।

वैशम्पायन कहते हैं, इतने में नासिकेत धर्मराज के पुर से हो आया, यह सुनि ऋषि लोग बहुत चकित हो अपने अपने आश्रम से जिस भाँति से तप करते थे, उसी प्रकार से यमलोक के समाचार पूछने के लिए चल खड़े भए। कितने एक तो नीचे माथ ऊपर पाँव किए और कितने एक ही चरण से खड़े, कोई दोनों, कोई एक ही हाथ उठाए, किसी को देखो तो मौन ही व्रत किए, कोई मूल पत्ते ही खा, कोई निराहारी हुए, बहुतेरे ससार सागर पार होने को योग ही में मगन दिगम्बर वेष बनाए, कठिन से कठिन तपस्या में मन लगाए, जहाँ पिता के समीप नासिकेत बैठे थे वहाँ आन पहुँचे।

देखते ही वह हर्षित हो उठ खड़े भए औ प्रणाम कर मिल भेंट, कुशल क्षेम पूछ, आसन दे एक एक को अलग अलग बैठा, पाँव धुला, आचमन करा, अक्षत चन्दन फूल ले सबों को पूजने लगे।

तब समय जान ऋषि लोग बोल उठे कि नासिकेत! हम तुमसे अति प्रसन्न भए। शिष्टाचार तो जैसा कुछ चाहिये वैसा हो चुका वो होता रहेगा, अब यमलोक की बात सुनावो। कैसी वह पुरी है कि जहाँ सदा आप धर्मराज विराजते रहते हैं? कैसे यम व दूत हैं? क्या वहाँ की रीति रहन ज्ञान तपस्या वो कैसी वहाँ वैतरणी नदी है? और यहाँ जो करते सो वहाँ कैसे भोगते हैं? किस करम के फेर से

हैं ? कैसा उनका दंड व कैसे चित्रगुप्त हैं जो प्राणियों के धर्म्म अधर्म्म लिख धर्म्मराज को जनाते हैं ? पास में उनके कौन कौन मुनि लोग रहते हैं ? सो सब कृपा कर कहो कि जिससे अति संतुष्ट हो तुम्हारे गुण को गावें ।

उनकी इतनी बात सुनि बीच में बैठ नासिकेत मुनि कहने लगे कि जितने तुम साधु सन्त हो सो अब सावधान हो सुनो। ऐसी आश्चर्य यह कथा है कि जिसके श्रवण से रोमाँच होत हैं ।

राजा भोज का सपना

वह कौनसा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी महाराजा भोज का नाम न सुना हो। उसकी महिमा और कीर्ति तो सारे जगत् में व्याप रही है। बड़े बड़े महीपाल उसका नाम सुनते ही काँप उठते और बड़े बड़े भूपति उसके पाँव पर अपना सिर नवाते, सेना उसकी समुद्र की तरंगों का नमूना और ख़ज़ाना उसका सोने चाँदी और रत्नों की खान से भी दूना। उसके दान ने राजा कर्ण को लोगों के जी से भुलाया और उसके न्याय ने विक्रम को भी लजाया। कोई उसके राज्य भर में भूखा न होता और न कोई उघाड़ा रहने पाता। जो सत्तू माँगने आता उसे मोतीचूर मिलता और गज़ी चाहता उसे मलमल दी जाती। पैसे की जगह लोगों को अशर्फियाँ बाँटता और मेह की तरह भिखारियों पर मोती बरसाता। एक एक श्लोक के लिये लाखों देता और ब्राह्मणों को षट्रस भोजन कराके तब आप खाने को बैठता, तीर्थ-यात्रा स्नान,दान और व्रत-उपवास में सदा तत्पर रहता। उसने बड़े बड़े चान्द्रायण किये थे और बड़े बड़े जंगल पहाड़ छान डाले थे।

एक दिन शरद ऋतुमें सन्ध्या के समय फुलवाड़ी के बीच स्वच्छ पानी के कुण्ड के तीर जिसमें कुमुद और कमलों के बीच जलपक्षी किलोलें कर रहे थे, रत्नजटित सिंहासन पर कोमल तकिये के सहारे स्वस्थचित्त बैठा हुआ वह महलों की सुनहरी लगी हुई संगमरमर की गुमजियों के पीछे से उदय पूर्णिमा का चन्द्रमा देख रहा था और कारण मन ही मन में सोचता था कि

फुल को ऐसा प्रकाश किया जैसे सूर्य से इन कमलों का विकास होता है। क्या मनुष्य और क्या जीव जन्तु मैंने अपना सारा जन्म इन्हीं का भला करने में गँवाया और व्रत उपवास करते करते फूल से शरीर को काँटा बनाया। जितना मैंने दान किया उतना तो कभी किसी के ध्यान में भी न आया होगा। जो मैं ही नहीं तो फिर और कौन हो सकता है? मुझे अपने ईश्वर पर दावा है, वह अवश्य मुझे अच्छी गति देगा। ऐसा कौन हो सकता है कि मुझे कुछ दोष लगे?

इसी अर्से में चोबदार ने पुकारा—"चौधरी इन्द्रदत्त निगाह रूबरू।" श्री महाराज सलामत भोज ने आँख उठाई, दीवान ने साष्टाँग दण्डवत् की, फिर सम्मुख जा हाथ जोड़ यों निवेदन किया—"पृथ्वीनाथ, सड़क पर के कुएँ जिनके वास्ते आपने हुक्म किया था बन कर तैयार हो गये। जो पानी पीता है, आप को असीस देता और जो उन पेड़ों की छाया में विश्राम करता है आपकी बढ़ती दौलत मनाता है।" राजा अति प्रसन्न हुआ और बोला कि, "सुन, मेरी अमलदारी भर में जहाँ जहाँ सड़कें हैं, कोस कोस पर कुएँ खोदवा के सदाव्रत बैठा दें और दुतरफा पेड़ भी जल्द लगवा दें।" इसी अर्से में दानाध्यक्ष ने आकर आशीर्वाद दिया और निवेदन किया कि "धर्मावतार! वह जो पाँच हज़ार ब्राह्मण हर साल जाड़े में रज़ाई पाते हैं सो ड्योढ़ी पर हाज़िर हैं।" राजा ने कहा—"अब पाँच के बदले पचास हज़ार को मिला करे और रज़ाई की जगह शाल दुशाले दिये जावें।" दानाध्यक्ष ... के लाने के वास्ते तोशेख़ाने में गया। इमारत के दारोग़ा

ने आकर मुजरा किया और खबर दी कि "महाराज ! इस बड़े मन्दिर की, जिसके जल्द बना देने के वास्ते सरकार से हुक्म हुआ है, आज नींव खुद गई, पत्थर गड़े जाते हैं और लुहार लोहा भी तैयार कर रहे हैं।" महाराज ने तिउरियाँ बदल कर उस दरोगा को खूब घुड़का "अरे मूर्ख, वहाँ पत्थर और लोहे का क्या काम है ? बिल्कुल मन्दिर संगमरमर और संगमूसा से बनवाओ और लोहे के बदले उसमें सब जगह सोना काम में लाओ जिस में भगवान भी उसे देख कर प्रसन्न हो जावें और मेरा नाम इस संसार में अतुल कीर्ति पावे।"

यह सुन सारा दरबार पुकार उठा कि "धन्य महाराज ! क्या न हो ? जब ऐसे हो तब तो ऐसे हो ! आपने इस कलिकाल को सतयुग बना दिया, मानो धर्म का उद्धार करने को इस जगत में अवतार लिया है। आज आपसे बढ़कर और दूसरा कौन ईश्वर का प्यारा है ? हमने तो पहले ही से आप को साक्षात् धर्मराज विचारा है।" व्यास जी ने कथा आरम्भ की, भजन कीर्तन होने लगा। चाँद सिर पर चढ़ आया। घड़ियाली ने निवेदन किया कि, महाराज ! आधी रात के निकट है।" राजा की आँखों में नींद आ रही थी, व्यास कथा कहते थे, पर राजा की आँखों में ऊँघ आती थी। वह उठ कर रनवास में गया।

जड़ाऊ पलंग और फूलों की सेज पर सोया। रानियाँ पैर दाबने लगीं। राजा की आँख झप गई तो स्वप्न में क्या देखता है कि वह बड़ा संगमरमर का मन्दिर बनकर बिल्कुल तैयार हो गया कहीं उस पर नक्काशी का काम किया है, वहाँ

गारीकी और सफाई में हाथीदांत को भी मात कर दिया है, कहीं पच्चीकारी का हुनर दिखलाया है, वहां जवाहिरों को पत्थर में जड़ कर तसवीर का नमूना बना लिया है। कहीं लालों के गुल्लों पर नीलम की बुलबुलें बैठी हैं और आम की शक्ल हीरों के लोलक लटकाए हैं, कहीं पुखराजों की डंडियों से पन्ने के पत्ते निकाल कर मोतियों के गुच्छे लगाए हैं। सोने के चोबों पर शामियाने और उनके नीचे बिल्लौर के हौजों में गुलाब और केवड़े के फुहारे छूट रहे हैं। माना धूप जल रहा है। सैकड़ों कपूर के दीपक बल रहे हैं। राजा इसके ही मारे घमंड के फूलकर मशक बन गया। कभी नीचे कभी ऊपर, कभी दाहिने कभी बायें निगाह करता और मन में सोचता कि अब इतने पर भी मुझे क्या कोई स्वर्ग में घुसने से रोकेगा या पवित्र पुण्यात्मा न कहेगा? मुझे अपने कर्मों का भरोसा है, दूसरे किसी से क्या काम पड़ेगा?

इसी अर्से में वह राजा उस सपने के मन्दिर में खड़ा खड़ा क्या देखता है कि एक ज्योति सी उसके सामने आसमान से उतरी चली आती है। उसका प्रकाश तो हजारों सूर्य से भी अधिक है, परन्तु जैसे सूर्य को बादल घेर लेता है उस प्रकार उसने मुँह पर घूँघट सा डाल लिया है, नहीं तो राजा की आँखें कब उस पर ठहर सकती थीं, इस घूँघट पर भी वे मारे चकाचौंध के झपकी चली जाती थीं, राजा उसे देखते ही काँप उठा और लड़खड़ाती सी जबान से बोला कि, "हे महाराज! आप कौन हैं और मेरे पास किस प्रयोजन से आये हैं?" उस पुरुष ने

बादल की गरज के समान गंभीर उत्तर दिया कि "मैं सत्य हूँ, अंधों की आँखें खोलता हूँ, मैं उनके आगे से धोखे की टट्टी हटाता हूँ, मैं मृगतृष्णा में भटके हुओं का भ्रम मिटाता हूँ और सपने में भूले हुओं को नींद से जगाता हूँ। हे भोज! अगर कुछ हिम्मत रखता है तो आ हमारे साथ आ और हमारे तेज व प्रभाव से मनुष्यों के मन के मन्दिरों का भेद ले, इस समय हम तेरे ही मन को जाँच रहे हैं।" राजा के जी पर एक अजब दहशत सी छा गई। नीची निगाह करके वह गर्दन खुजाने लगा। सत्य बोला, "भोज! तू डरता है, तुझे अपने मन का हाल जानने में भी भय लगता है?" भोज ने कहा, "नहीं, इस बात से तो नहीं डरता, क्योंकि जिसने अपने तईं नहीं जाना, उसने फिर क्या जाना? सिवाय इसके मैं तो आप चाहता हूँ कि कोई मेरे मन की थाह लेवे और अच्छी तरह से जाँचे। मारे व्रत और उपवासों के मैंने अपना फूल सा शरीर काँटा बनाया, ब्राह्मणों को दान दक्षिणा देते देते सारा खजाना खाली कर डाला, कोई तीर्थ बाकी न रखा, कोई नदी या तालाब नहाने से न छोड़ा, ऐसा कोई आदमी नहीं कि जिस की निगाह में मैं पवित्र पुण्यात्मा न ठहरूँ।" सत्य बोला, "ठीक, पर भोज! यह तो बतला कि तू ईश्वर की निगाह में क्या है? क्या हवा में बिना धूप त्रसरेणु कभी दिखलाई देते हैं? पर सूर्य की किरणें पड़ते ही कैसे अनगिनत चमकने लग जाते हैं! क्या कपड़े से छाने हुए मैले पानी में किसी को कीड़े मालूम पड़ते हैं? पर जब खुर्दबीन शीशे को लगा कर देखो तो एक एक घूंट में हजारों ही जीव सूझने लग जाते

उस बात के जानने से, जिसे अवश्य जानना चाहिए डरना नहीं तो आ मेरे साथ आ, मैं तेरी आँखें खोलूँगा।"

निदान सत्य यह कह राजा को उस बड़े मन्दिर के ऊँचे दरवाज़े पर चढ़ा ले गया जहाँ से सारा जाग दिखलाई देता था, और फिर वह उससे कहने लगा कि "भोज! मैं अभी तेरे पाप कर्मों की कुछ भी चर्चा नहीं करता। क्योंकि तूने अपने तईं निरा निष्पाप समझ रखा है, पर यह तो बतला कि तूने पुण्यकर्म कौन कौन से किये हैं कि जिन से सर्वशक्तिमान जगदीश्वर सन्तुष्ट होगा।" राजा यह सुन के अत्यन्त प्रसन्न हुआ। यह तो मानों उसके मन की बात थी। पुण्य कर्म के नाम ने उसके चित्त को कमल सा खिला दिया। उसे निश्चय था कि पाप तो मैंने चाहे किया हो चाहे न किया हो पर पुण्य मैंने इतना किया है कि भारी से भारी पाप भी उसके पासग में न ठहरेगा। राजा को वहाँ उस समय सपने में तीन पेड़ बड़े ऊँचे अपनी आँख के सामने दिखाई दिये। फलों से वे इतने लदे हुए थे कि मारे बोझ के उनकी टहनियाँ धरती तक झुक गई थीं। राजा उन्हें देखते ही हरा हो गया और बोला कि 'सत्य, यह ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया अर्थात् ईश्वर और मनुष्य दोनों की प्रीति के पेड़ हैं, देख, फलों के बोझ से यह धरती पर नये हैं। यह तीनों मेरे ही लगाये हैं। पहले में तो ये सब लाल लाल फल मेरे दान से लगे हैं और दूसरे में ये पीले पीले मेरे न्याय से और तीसरे में ये सब सफेद फल मेरे तप का प्रभाव दिखाते हैं।" मानों उस समय यह ध्वनि चारों ओर से राजा के कानों में चली आती थी

कि 'धन्य हो ! आज तुम सा पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं, तुम साक्षात् धर्म के अवतार हो, इस लोक में भी तुमने बड़ा पद पाया है और उस लोक में भी इससे अधिक मिलेगा, तुम मनुष्य और ईश्वर दोनों की आँखों में निर्दोष और निष्पाप हो। सूर्य के मण्डल में लोग कलंक बतलाते हैं पर तुम पर एक छींटा भी नहीं लगाते।"

सत्य बोला कि "भोज, जब मैं इन पेड़ों के पास था जिन्हें तू ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया के बतला है, तब तो इनमें फल फूल कुछ भी नहीं थे, निरे ठूँठ से खड़े थे। ये लाल, पीले और सफेद फल कहाँ से आ गए ? ये सचमुच उन पेड़ों में फल लगे हैं या तुझे फुसलाने और बस करने को किसी ने उनकी टहनियों से लटका दिये हैं ? चल, उन पेड़ों के पास चल कर देखें तो सही। मेरी समझ में तो यह लाल लाल फल, जिन्हें तू अपने दान के प्रभाव से लगे बतलाता है, यश और कीर्त्ति फैलाने की चाह अर्थात् पाने की इच्छा ने इस पेड़ में लगाए हैं।" निदान ज्योंही सत्य ने उस पेड़ के छूने को हाथ बढ़ाया राजा सपने में क्या देखता है कि वह सारे फल जैसे आसमान से ओले गिरते हैं एक आन की आन में धरती पर गिर पड़े। धरती सारी लाल हो गई, पेड़ों पर सिवाय पत्तों के और कुछ न रहा। सत्य ने कहा कि राजा ! जैसे कोई चीज़ को मोम से चिपकाता है उसी तरह तू ने अपने भुलाने की प्रशंसा की इच्छा से ये फल इस
... लिए थे सत्य के तेज से यह मोम गल
रह गया। जो तूने दिया और किया

दिखलाने और मनुष्यों से प्रशंसा पाने के लिये। केवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से तो कुछ भी नहीं किया। यदि कुछ दिया हो या किया हो तो तू ही क्यों नहीं बतलाता? मूर्ख! इसी के भरोसे पर तू फूला हुआ स्वर्ग में जाने को तैयार हुआ था?" भोज ने एक ठण्डी साँस ली। उसने तो औरों को भूला समझा था, पर वह सब से अधिक भूला हुआ निकला। सत्य ने उस पेड़ की तरफ़ हाथ बढ़ाया जो सोने की तरह चमकते हुए पीले पीले फलों से लदा हुआ था। सत्य बोला, "राजा, ये फल तू ने अपने सुलाने को, स्वर्ग की स्वार्थ सिद्धि करने की इच्छा से लगा लिये थे। कहने वाले ने ठीक कहा है कि मनुष्य मनुष्य के कर्मों से उसके मन की भावना का विचार करता है और ईश्वर मनुष्य के मन की भावना के अनुसार उसके कर्मों का हिसाब लेता है। तू अच्छी तरह जानता है कि यही न्याय तेरे राज्य की जड़ है। जो न्याय न करे तो फिर यह राज्य तेरे हाथ में क्यों कर रह सके? जिस राज्य में न्याय नहीं वह तो बेनींव का घर है, बुढ़िया के दाँतों की तरह हिलता है, अब गिरा तब गिरा। मूर्ख, तू ही क्यों नहीं बतलाता कि यह तेरा न्याय स्वार्थसिद्धि करने और सांसारिक सुख पाने की इच्छा से है अथवा ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से?"

भोज की पेशानी पर पसीना हो आया, उसने आँखें नीची कर लीं, उससे जवाब कुछ न बन पड़ा। तीसरे पेड़ की बारी आई। सत्य का हाथ लगते ही उसकी भी वही हालत हुई। राजा लज्जित हुआ। सत्य ने कहा—"मूर्ख! यह तेरे तप के फल

कदापि नहीं, इनको तो इस पेड़ पर तेरे अहङ्कार ने लगा रक्खा था। यह कौनसा व्रत व तीर्थयात्रा है जो तूने निरहङ्कार केवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से की हो? तूने यह तप केवल इसी वास्ते किया कि जिसमें तू अपने तई औरों से अच्छा और बढ़ कर विचारे। ऐसे ही तप पर गोवरगनेश,तू स्वर्ग मिलने की उम्मेद रखता है?

पर यह तो बतला कि मन्दिर की उन मुडेरों पर ये पक्षी से क्या दिखलाई देते हैं? कैसे सुन्दर और प्यारे मालूम होते हैं! पर ना उनके पञ्जे पर हैं और गरदनें फीरोज़ की, परन्तु पूँछ में तो सारे प्रकार के जवाहिर जड़ दिये हैं।' राजा के जी में घमड की चिड़िया ने फिर फुरी फुरी ली, मानों बुझते हुए दीये की तरह जगमगा उठा, जल्दी से उत्तर दिया कि ह "सत्य, यह जो कुछ तू मन्दिर की मुडेरों पर देखता है मेरे सन्ध्या-वन्दन का प्रभाव है। मैने जो रातों जाग जाग कर और माथा रगड़ते २ इस मन्दिर की देहलीज को घिसाकर ईश्वर की स्तुति वन्दना और विनती प्रार्थना की वही अब चिड़िया की तरह पंखे फैलाकर आकाश को जाती हैं, मानो ईश्वर के सामने पहुँच कर अब मुझे स्वर्ग का रास्ता बताती हैं।" सत्य ने कहा कि "राजा, दीनबन्धु, करुणासागर, श्रीजगन्नाथ जगदीश्वर अपने भक्तों की विनती सदा सुनता रहता है, और जो मनुष्य शुद्ध हृदय और निष्कपट होकर नम्रता और श्रद्धा के साथ अपने दुष्कर्मों का पश्चात्ताप अथवा उनकी क्षमा होने का टुक भी निवेदन है वह उसका निवेदन तत्काल सूर्य चाँद का

...की बड़ी भारी विशेषता यह है कि इन्होंने कहीं पर भी उर्दू या
...रसी का एक शब्द भी प्रयुक्त नहीं किया।

इनका देहान्त १८ जुलाई सन् १८९६ को हुआ।



(एक बालक सिंह के बच्चे को घसीटता हुआ लाता है, और दो तपस्विनी उसे रोकती हुई आती हैं)

बालक—अरे सिंह, तू अपना मुँह खोल, मैं तेरे दाँत गिनूँगा।

पहली तपस्विनी—हे अन्यायी, तू इन पशुओं को क्यों सताता है, हम तो इन्हें बाल-बच्चों के समान रखती हैं। हाय ! तेरा साहस बढ़ता ही जाता है। तेरा नाम ऋषियों ने सर्वदमन रक्खा है, सो ठीक ही है !

दुष्यन्त—[आप-ही-आप] अहा ! क्या कारण है कि मेरा स्नेह इस बालक में ऐसा होता जाता है, जैसा पुत्र में होता है। हो न हो, यह हेतु है कि मैं पुत्र-हीन हूँ।

दूसरी तपस्विनी—जो तू बच्चे को छोड़ न देगा, तो यह सिंहनी तुझ पर दौड़ेगी।

बालक—[मुस्काकर] ठीक है, सिंहनी का तुझे बड़ा ही डर है !

[[illegible]]

दुष्यन्त—

दीखत बालक मोहि यह [illegible],
काठ काज जैसे अगिनि [illegible]।

पहली तपस्विनी—हे प्यारे बालक, तू सिंह के बच्चे को छोड़ दे, मैं तुझे और खिलौना दूँगी।

बालक—[illegible]

दुष्यत—इसके तो लक्षण भी चक्रवर्तियों के-से हैं क्योंकि

मांग खिलौना लेन को जबहि पसारयो हाथ,
जालगुँथी-सी आगुरी सब दीखीं इक साथ।
मनहुँ खिलायो कमल कछु प्रात अरुण न आय,
नैक न पखुरिन बीच में अँतर परत लखाय।

दूसरी तपस्विनी—हे सुव्रता, यह बातों से न मानेगा। जा, मेरी कुटी में एक मिट्टी का मोर ऋषिकुमार मारकंडेय के खेलने का रक्खा है, उसे ले आ।

पहली तपस्विनी—मैं अभी लिए आती हूँ।

[जाती है]

बालक—तब तक मैं इसी सिंह के बच्चे से खेलूँगा।

[यह कहकर तपस्विनी की ओर हँसता है]

दुष्यत—[आप ही-आप] इसके खिलाने को मेरा जी कैसा ललचाता है।

हँसी बिनहेत माहिं नीरस बतीसी कछू,
निकसी मनो हैं पाँति ओछी कलिकान की,
बोलन चहत बात टूटी-सी निकसि जात,
लागति अनूठी मीठी बानी तुतलान की।
गोदतें न प्यारी और भावे मन कोई ठाँव,
दौरि-दौरि बैठें छोड़ि भूमि अँगनान की।
धन्य धन्य वे हैं नर मैले जो करत गात—
कनिया लगाई धूरि ऐसे सुवनान की।

दूसरी तपस्विनी—यह मेरी बात तो कान नहीं धरता। [इधर-

उधर देखकर] कोई ऋषिकुमार यहाँ है, [दुष्यंत को देखकर] हे महात्मा, तुम्हीं आओ, कृपा करक इस बली बालक के हाथ से सिंह क बचे को छुडाओ। यह इसे खेल में ऐसा पकड रहा है कि छुडाना कठिन है।

दुष्यन्त—अच्छा। [लडके के पास जाकर और हँसकर] आश्रम-वासिन को यह रीति, पशु-पालन में राखन प्रीति, सो ऋषि-सुत दूषित तैं कीनो, उलटी वृत्ति यहाँ क्यों लीनी। करत जन्म ही तें ये काजा, जो नहिं सोहत मुनिन-समाजा, तैं यह कियो तपोवन ऐसो, कृष्ण सर्प-शिशु चन्दन जैसो।

दूसरी तपस्विनी—हे, बडभागी यह ऋषिकुमार नहीं है।

दुष्यन्त—सत्य है, यह तो इसक आकार-सदृश काम ही कहे देते हैं परन्तु मैंने तपोवन में इसका वास देख ऋषि-पुत्र जाना था। [जैसी मन में लालसा है, लडक का हाथ अपने हाथ में लेकर आप ही-आप]

ना जानूँ का वश को अँकुर यहै कुमार,
मो तन ऐतौ सुख भयो जाहि छुअत इक बार।
वा बडभागी के हिये कितो न होय उमँग,
उपज्यो जाके अँग तें ऐसो याको अँग।

तपस्विनी—[दोनों की ओर देखकर] बडे अचंभे की बात है।

दुष्यन्त—तुमको क्या अचभा हुआ ?

तपस्विनी—इसलिये हुआ कि इस बालक की और तुम्हारी उनहार बहुत मिलती है, और तुम्हें जाने बिना भी इसने तुम्हारा कहना मान लिया।

दुष्यन्त—[लड़के को खिलाता हुआ] हे तपस्विनी, जो यह ऋषि-पुत्र नहीं, तो किसका वंश है ?

तपस्विनी—यह पुरुवंशी है।

दुष्यन्त—[आप ही-आप] यह हमारे वंश का कैसे हुआ, इस भागवती ने मेरी उनहार का इसे क्यों कहा—हाँ, पुरुवंशियों में यह रीति तो निश्चय है कि—

छितिपालन के कारने पहले लेत निवास,
आय भवन ऐसेन में जहँ सब भोग-विलास।
पाछें बन में बसत हैं लै तरवर की छाँह,
इही जीवन की नियम धरि एकहि मन माँह।

[प्रगट] परन्तु यह ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ मनुष्य अपने बल से आ सके।

दूसरी तपस्विनी—तुम सच कहते हो, इसकी मा मेनका नाम अप्सरा की बेटी है, उसी के प्रताप से इसका जन्म देव-पितर के इस तपोवन में हुआ है।

दुष्यन्त—[आप ही आप] यह दूसरी बात आशा उपजाने वाली हुई। [प्रगट] भला, इसकी मा किस राजर्षि की पत्नी है ?

दूसरी तपस्विनी—जिसने अपनी विवाहिता स्त्री को बिना अपराध छोड़ दिया, उसका नाम कौन लेगा ?

दुष्यन्त—[आप-ही-आप] यह कथा तो मुझी पर लगती है। अब इस बालक की माँ का नाम पूछूँ। [सोचकर] परन्तु पराई स्त्री का वृत्तांत पूछना अन्याय है।

[तपस्विनी मिट्टी का मोर लिए हुए आती है]

तपस्विनी—हे सर्वदमन ! यह शकुन्तलावण्य देख ।

बालक—[बड़े चाव से देखकर] कहाँ है शकुन्तला मेरी मा ?

दोनों तपस्विनी—यह मा के प्यारे नाम से धोखा खा गया ।

दूसरी तपस्विनी—मुन्ना, मैंने तो यह कहा था कि इस मिट्टी के सुन्दर मोर को देख ।

दुष्यन्त—[आप ही-आप] क्या इसकी मा का नाम शकुन्तला है ! हुआ करे, एक नाम के अनेक मनुष्य होते हैं । कहीं मुझे दुःख देने को नाम का उच्चारण ही मृग-तृष्णा के समान न बना हो ।

बालक—मुझे यह मोर बहुत अच्छा लगता है ।

[खिलौने को लेता है]

पहली तपस्विनी—[घबराकर] हाय-हाय ! इसकी बाँह से रक्षा बंधन कहाँ गया ।

दुष्यन्त—घबराओ मत, जब यह नाहर के बच्चे से खेल रहा था, इसके हाथ से गंडा गिर गया, सो यह पड़ा है ।

[गंडा उठाने को झुकता है]

दोनों तपस्विनी—मत उठाओ, मत उठाओ । हाय ! इसने क्यों उठा लिया ।

[दोनों अचभे से छाती पर हाथ रखकर एक दूसरी की ओर देखती हैं]

दुष्यन्त—तुमने मुझे इसके उठाने से किस लिए बरजा ?

[illegible] सुनों महाराज, इस गंडे का नाम अपराजित है, [illegible] बालक का जात-कर्म हुआ, महात्मा मरीचि के [illegible] दिया था । इसमें यह गुन है कि

पर गिर पड़े, तो इस बालक को और इसके मा बाप को छोड़ और कोई न उठा सके।

दुष्यन्त—और जो कोई उठा ले तो ?

पहली तपस्विनी—तो वह तुरन्त साँप बनकर उसे डसता है।

दुष्यन्त—तुमने ऐसा होते कभी देखा है ?

दोनों तपस्विनी—अनेक बार।

दुष्यन्त—[प्रसन्न होकर आप-ही-आप] अब मेरा मनोरथ पूरा हुआ। मैं क्यों आनन्द न मनाऊँ।

[लड़के को गोद में लेता है]

दूसरी तपस्विनी—आओ सुव्रता यह सुख का समाचार चल कर शकुन्तला को सुनावें, वह बहुत दिन से वियोग के कठिन नेम कर रही है। [दोनों जाती हैं]

बालक—मुझे छोड़ो, मैं अपनी मा के पास जाऊँगा।

दुष्यन्त—हे पुत्र, तू मेरे संग चलकर अपनी मा को सुख दीजो।

बालक—मेरा पिता तो दुष्यन्त है, तुम नहीं हो।

दुष्यन्त—[मुसकाकर] यह विवाद भी मुझे प्रतीत कराता है।

[एक वेनी धारण किए शकुन्तला आती है]

शकुन्तला—[आप ही-आप] मैं सुन तो चुकी हूँ कि सर्वदमन के गंडे ने औसर पाकर भी रूप न पलटा, परन्तु अपने भाग्य का मुझे कुछ भरोसा नहीं। हाँ इतनी आशा है कि कदाचित सानुमती का कहना सच्चा हो गया हो।

नियम कर बीते दिवस दूबर अङ्ग लखात ,
सीस एक बेनी धरे बसन धूसरे गात।
दीरघ बिरहाव्रत सती साधति सुख बिसराय ,
मो निरदय के कारने अपने शील सुभाय।

शकुन्तला—[पछतावे में रूप बिगडे हुए राजा को देखकर] यह तौ मेरा पति-सा नहीं है, और जो नहीं है, तौ कौन है, जिसने रक्षाबन्धन पहन हुए मेरे बालक को अङ्ग लगाके दूषित किया ?

बालक—[दौडता हुआ माता के पास जाकर] माता, यह पुरुष कौन है, जिसन पुत्र कहकर मुझे गोद में ले लिया।

दुष्यत—हे प्यारी मैंने तेरे साथ निठुराई तौ बहुत की, परन्तु परिणाम अच्छा हुआ, क्योंकि मैं देखता हूँ कि तेने मुझे पहचान लिया।

शकुन्तला—[आप-ही-आप] अरे मन ! तू धीरज धर, अब मुझे भरोसा हुआ कि विधाना ने ईर्षा छोड़ मुझ पर दया की है। [प्रकट] यह तौ निश्चय मेरा ही पति है।

दुष्यत—हे प्यारी !

सुधि आई, सब भ्रम मिट्यो, सफल भए मम काज ,
धन्य भागि सुमुखी लखूँ सनमुख ठाडी आज।
अंधकार मिटि ग्रहण कौ दूर होत जब सोग ,
तुरत चन्द्र सों रोहिनी करति आय सयोग।

शकुन्तला—महाराज की—

[इतना कहकर गद्गद बानी हो आँसू गिराती है]

हे ,मा यह पुरुष कौन है ?

शकुन्तला—बेटा, अपने भाग्य से पूछो।

दुष्यंत—[शकुन्तला के पैरों में गिरता है]

मनतें प्यारी दूर अब डारि जिलग अपमान,
वा छिन मेरे हिय रह्यो प्रबल कछू अज्ञान।
तामस भ्रम गति होति यह बहुतन की सुखनार,
फेंकत जिमि अहि जानिक अब दियो गलहार।

शकुन्तला—उठो प्राणपति, उठो! उस दिनों मेरे पूर्वजन्म के पाप उदय हुए थे, जिन्होंने सुकर्मों का फल मेट मेरे दयावान पति को मुझ से निःस्नेह कर दिया। [राजा उठता है] अब यह कहो कि मुझ दुखिया की सुध तुम्हें कैसे आई?

दुष्यंत—जब संताप का काँटा मेरे कलेजे से निकल जायगा, तब सब कहूँगा।

शकुन्तला—[राजा की अँगुली में अँगूठी देखकर] क्या यह वही मुँदरी है।

दुष्यंत—हाँ, इसी के मिलते मुझे तेरी सुध आई।

शकुन्तला—इसने बुरा किया कि जब मैं अपने स्वामी को प्रतीत करती थी यह दुर्लभ हो गई।

दुष्यंत—हे प्यारी, अब तू इसे फिर पहन। जैसे ऋतु के आने पर लता फिर फूल धारन करती है।

शकुन्तला—मुझे इसका विश्वास नहीं रहा, तुम्हीं पहने रहो।

[मातलि आता है]

मातलि—महाराज धन्य है यह दिन कि आपने फिर धर्मपत्नी पाई, और पुत्र का मुख देखा।

दुष्यंत—हाँ, आज मेरा मनोरथ सफल हुआ। हे मातलि, तुम यह तो कहो कि इस वृत्तांत को इन्द्र ने जान लिया था कि नहीं।

मातलि—[हँसकर] देवताओं से क्या छुपा है। अब आओ, महात्मा कश्यप आपको दर्शन देंगे।

दुष्यंत—प्यारी, तू पुत्र का हाथ थाम ले, मैं तुझे आगे लेकर महात्मा का दर्शन करना चाहता हूँ।

शकुन्तला—तुम्हारे संग बड़ों के सन्मुख आते मुझे सकुच लगती है।

दुष्यन्त—ऐसे शुभ अवसर पर ऐसा ही करना उचित है, आओ।

[सब घूमते हैं]

[आसन पर बैठे कश्यप और अदिति दीखते हैं]

कश्यप—[राजा की ओर देखकर] हे दक्षसुत!

है यह तेरे पुत्र को रन-अगमानी भूप,
नाम जासु दुष्यंत है कीरति जासु अनूप।
जाके धनुष-प्रताप तें लहि के अब विश्राम—
शोभा ही को रहि गयो इन्द्र-वज्र अभिराम।

अदिति—बड़ाई तो इनके रूप ही से दीखती है।

मातलि—[दुष्यंत] हे राजा, ये देवताओं के माता-पिता आपकी ओर प्यार की दृष्टि से ऐसे देख रहे हैं, जैसे कोई अपने पुत्र को देखता है। आओ, इनके निकट चलो।

दुष्यंत—हे मातलि! क्या कश्यप और अदिति यही हैं?

इनहिं दुहुन को ऋषि-मुनि धावें, द्वादस रवि के जनक बनावें,

हैं मरीचिसुत दक्षसुता के, नाती अरु नातिन ब्रह्मा के।
सुर-नायक इनहीं ने जायो, जो तिरलोकीनाथ कहायो,
विधि ते परे पुरुष जो कोऊ, इनको कोख अवतर्‌यो सोऊ।

मातलि—हाँ, ये ही हैं।

दुष्यंत—[प्रणाम करके] हे महात्माओ! तुम्हारे पुत्र का आज्ञाकारी दुष्यंत प्रणाम करता है।

कश्यप—बेटा, तू चिरजीव होकर पृथ्वी-पालन करे।

अदिति—बेटा, तू रण में अजित हो।

शकु०—मैं भी आपके चरणों में बालक-समेत वन्दना करती हूँ।

कश्यप—हे पुत्री!

भारत तेरो इन्द्र सम सुत जयंत उपमान,
और कहा वर देहुँ तुहि तू हो सची-समान।

अदिति—हे पुत्री, तू सदा पति की प्यारी हो और यह बालक दीर्घायु होकर दोनों कुल का दीपक हो। आओ, बैठो।

[सब प्रजापति के सामने बैठते हैं]

कश्यप—[एक एक की ओर देखकर दुष्यंत से]

नारि सती, सुत शुद्ध कुल, तुम राजन सिर-मौर,
श्रद्धा विधि अरु वित्त-सम मिले धन्य इक ठौर।

दुष्यंत—हे महर्षि, आपका अनुग्रह बड़ा अपूर्व है।

फूल लगे तब होत फल, घन आवे तब मेह,
कारण कारज गति यही तामें नहिं संदेह।
पै अद्भुत तुम्हरी कृपा देखी मैंने काज,
वर तुमने पा[ ] दियो पहले पुजयो काज।

मातलि—प्रजापतियों की कृपा का बड़ा प्रभाव है।

दुष्यंत—हे भगवन्, आपकी इस दासी का विवाह मेरे साथ गांधर्व रीति से हुआ था, फिर कुछ काल बीते आपके के लोग इसे मेरे पास लाए। उस समय मेरी ऐसी सुध भूली कि इसे पहचान न सका, और इसका त्याग करके मैं आपके सगोत्री कन्व का अपराधी बना। पीछे अंगूठी देखकर मुझे सुध आई कि कन्व की बेटी से मेरा ब्याह हुआ था, यह वृत्तांत अचरज-सा दीखता है।

लखि सनमुख हाथी जिमि कोई कहे कि यह हाथी नहिं होई,
निकसि जाय तब शंका लावे, हाँ कबहूँ-कबहूँ ना आवे।
खोज देखि फिर हाथी जाने निश्चय भूल आपनी माने,
याही विधि गति मो मन करी, उलटि पलटि लीनी बहु फेरि।

कश्यप—हे बेटा, जो कुछ अपराध हुआ, उसका सोच अपने मन से दूर कर, क्योंकि तुझे उस समय भ्रम ने घेर लिया था, अब सुन।

दुष्यंत—मैं एकाग्र-चित्त होकर सुनता हूँ, आप कहें।

कश्यप—जब अप्सरा-तीर्थ पर जाकर मेनका ने शकुन्तला को व्याकुल देखा तो उसे लेकर अदिति के पास आई। मैंने उसी समय ध्यान-शक्ति से जान लिया कि तैंने अपनी पतिव्रता को केवल दुर्वासा के शाप-वश छोड़ा है, और इस शाप की अवधि मुंदरी के दर्शन तक रहेगी।

दुष्यंत—[आप-ही-आप] तो मैं धर्मपत्नी परित्याग के अपवाद से बच गया।

शकु०—[आप-ही-आप] धन्य है कि स्वामी ने मुझे जान बूझ-कर नहीं त्यागा। परन्तु मुझे सुध नहीं है कि शाप कब हुआ, अथवा उस समय पतिवियोग के सोच में बेसुध हूँगी, क्योंकि मेरी सखियों ने मुझे जता दिया था कि अपने भरता को अगूठी दिखा देना।

कश्यप—हे पुत्री, अब तू कृतार्थ हुई अपने पति का अपराध मत समझ।

निठुर भयो पति भूलि सुधि तू त्यागी वश शाप,
दई तोहि अब भ्रम मिटें सब विधि प्रभुता आप।
छाया परनि न मुकर में मैल कछू जो होई,
पै दीसत है सहज ही अब डार्यो वह धोई।

दुष्यत—महात्मा, यह मेरे वंश की प्रतिष्ठा है।

[बालक का हाथ पकड़ता है]

कश्यप—यह भी जान लो कि यह बालक चक्रवर्ती होगा।

सुखगामी रथ पै चढ़्यो उतरि महोदधि पार,
जीतगो यह बीर नर तीन दीप अरु चार।
किए पशू बस सब यहाँ सर्वदमन भौ नाम,
प्रजा भरया कर होयगो फेरि भरत अभिराम।

दुष्यत—जिसके आपने सस्कार किये हैं उसमें हमको किस किस बड़ाई की आशा नहीं।

अदिति—हे भगवन, शकुन्तला के मनोरथ सिद्ध हुए इस लिए इसके पिता को भी यह वृत्तांत सुनाना चाहिये, और इसकी माता तो मेरे ही पास है यह सब जानती है।

शकुंतला—[आप-ही आप] इस भगवती ने तौ मेरे ही मन की कही।

कश्यप—अपने तप के बल से कन्व मुनि सब वृत्तान्त जानते होंगे।

दुष्यंत—इसी से तो मुनि ने मुझ पर क्रोध न किया।

कश्यप—तौ भा हमें उचित है कि कन्व को यह मंगल-समाचार सुनावें। कोई है रे यहाँ ?

चेला—महात्मा, क्या आज्ञा है ?

कश्यप—हे गालव, तू अभी आकाश मार्ग से होकर [illegible] पास जा, और मेरी ओर से यह मंगल समाचार [illegible] दुर्वासा का शाप मिट जाने पर आज दुष्यंत ने [illegible] पहचान कर अंगीकार कर ली।

कश्यप—कहो पुत्र, अब तुम्हें और क्या आशीर्वाद दूँ ?

दुष्यंत—जो आपने कृपा की है, इससे अधिक आशीर्वाद क्या होगा, और कदाचित् आप पूछते ही हैं, तो भरत का वचन पूरा होने दीजिए ।

प्रजा काजे राजा नित सुकृत पै उद्यत रहैं,
बड़े वेदज्ञानी हित-सहित पूजें सुरसुती ।
उमास्वामी शंभु जगतपति नीलोहित प्रभु—
छुटावैं मोहू कों विपति अति आवागवन सों ।

कश्यप—तथास्तु ।

[सब बाहर जाते हैं]



स्वामी दयानन्द (सन् १८२४–१८८३)

स्वामी जी का जन्म सन १८२४ म गुजरात देश के मोरवी नाम नगर में हुआ। आपका जन्मनाम मूलशंकर था। आपके पिता प० अम्बाशंकर एक औदीच्य ब्राह्मण और जागीरदार थे।

आप की अवस्था जब १४ बरस की थी तो आपने पिता की आज्ञा से शिवरात्रि व्रत रक्खा। शिवपूजन के बाद रात को एक चूहे को शिवलिङ्ग पर चढ़ाई हुई मिठाइ आदि को खाते देख आप को मूर्तिपूजा से घृणा सी आइ और साथ ही सच्चे मार्ग की खोज की लगन हो गइ।

बीस वर्ष की अवस्था में आप घर छोड़ निकल पड़े और योग्य गुरु की खोज करने लगे। अन्त में मथुरा म स्वामी विरजानन्द को अपना गुरु मान उनसे विद्याभ्यास करने लग।

स्वामी विरजानन्द स वेदादि शास्त्र पढ़ कर अपने ध्येय का प्रचार करने को आप भारत के प्रान्त प्रान्त में घूमे और आर्य-समाजों का स्थापन किया। आप सस्कृत के अगाध पडित थ। आपकी मातृभाषा गुजराती थी तो भी आपने अपने सब ग्रन्थ हिन्दी में ही लिख। आप हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे।

आपन सत्यार्थप्रकाश, सस्कारविधि, वेदादिभाष्यभूमिका आदि अनेकों ग्रन्थ हिंदी में ही लिख हैं।

आपका देहान्त सन् १८८३ मे अजमेर में हुआ।

जो दण्ड है वही पुरुष, राजा, वही न्याय का प्रचारकर्त्ता और सब का शासनकर्त्ता, वही चार वर्ण और चार आश्रमों के धर्म का प्रतिभू अर्थात् जामिन है। वही प्रजा का शासनकर्त्ता सब प्रजा का रक्षक सोते हुए प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है इसीलिये बुद्धिमान लोग दण्ड ही को धर्म कहते हैं। जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाय तो वह सब प्रजा को आनन्दित कर देता है और जो विना विचारे चलाया जाय तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है। विना दण्ड के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न भिन्न हो जायें। दण्ड के यथावत् न होने से सब लोगों का प्रकोप हो जावे। जहां कृष्णवर्ण रक्तनेत्र भयंकर पुरुष के पापों का नाश करनेहारा दण्ड विचरता है वहां प्रजा मोह को प्राप्त न होके आनन्दित होती है परन्तु जो दण्ड का चलाने वाला पक्षपात रहित विद्वान् हो तो। जो उस दण्ड का चलाने वाला सत्यवादी विचार के करने हारा बुद्धिमान् धर्म अर्थ और काम की सिद्धि करने में पण्डित राजा है उसी को उस दण्ड का चलाने हारा विद्वान् लोग कहते हैं। जो दण्ड को अच्छे प्रकार राजा चलाता है वह धर्म अर्थ और काम की सिद्धि को बढ़ाता है और जो विषय में लम्पट, टेढ़ा, ईर्ष्या करनेहारा क्षुद्र नीचबुद्धि न्यायाधीश राजा होता है, वह दण्ड से ही मारा जाता है। जब दण्ड बड़ा तेजोमय है उसको अविद्वान् अधमात्मा धारण नहीं कर सकता तब वह दण्ड धर्म

से रहित कुटुम्बसहित राजा ही का नाश कर देता है। क्योंकि जो आप्त पुरुषों के सहाय, विद्या, सुशिक्षा से रहित, विषयों में आसक्त मूढ है वह न्याय से दण्ड को चलाने में समर्थ कभी नहीं हो सकता। और जो पवित्र आत्मा सत्याचार और सत्पुरुषों का सगी यथावत् नीति शास्त्र के अनुकूल चलने हारा श्रेष्ठ पुरुषों के सहाय से युक्त बुद्धिमान् है वही न्याय रूपी दण्ड के चलाने में समर्थ होता है।

सब सेना और सेनापतियों के ऊपर राज्याधिकार, दण्ड देने की व्यवस्था के सब कार्यों का आधिपत्य और सब के ऊपर वर्त्तमान सर्वाधीश राज्याधिकार इन चारों अधिकारों में सम्पूर्ण वेद शास्त्रों में प्रवीण पूर्ण विद्या वाले धर्मात्मा जितेन्द्रिय सुशील जनों को स्थापित करना चाहिए अर्थात् मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी, मुख्य न्यायाधीश, प्रधान और राजा ये चार सब विद्याओं में पूर्ण विद्वान होने चाहिये। न्यून से न्यून दश विद्वानों अथवा बहुत न्यून हों तो तीन विद्वानों की सभा जैसी व्यवस्था करे उस धर्म अर्थात् व्यवस्था का उल्लङ्घन कोई भी न करे। इस सभा में चारों वेद, न्यायशास्त्र, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि के वेत्ता विद्वान सभासद हों परन्तु वे ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ हों तब वह सभा [हो] कि जिसमें दश विद्वानों से न्यून न होने चाहिये। और जिस सभा में ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद के जानने वाले तीन सभासद् हो के व्यवस्था करें उस सभा की की हुई व्यवस्था को भी कोई उल्लङ्घन न करे। यदि एक अकेला सब वेदों का जानने हारा द्विजों में उत्तम सन्यासी जिस धर्म को

व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों लाखों क्रोड़ों मिल के जो कुछ व्यवस्था करें उसको कभी न मानना चाहिये। जो ब्रह्मचर्य्य सत्यभाषणादि व्रत वेदविद्या वा विचार से रहित जन्ममात्र से शूद्रवत् वर्त्तमान हैं उन सहस्रों मनुष्यों के मिलने से भी सभा नहीं कहाती। जो अविद्यायुक्त मूर्ख वेदों के न जानने वाले मनुष्य जिस धर्म को कहें उसको कभी न मानना चाहिये क्यों कि जो मूर्खों के कहे हुए धर्म के अनुसार चलते हैं उनके पीछे सैंकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं। इस लिये तीनों अर्थात् विद्यासभा धर्मसभा और राजसभाओं में मूर्खों को कभी भरती न करें किन्तु सदा विद्वान् और धार्मिक पुरुषों को स्थापन करें।

ऐसे लोग राजा और राजसभा के सभासद् तब हो सकते हैं कि जब वे चारों वेदों की कर्मोपासना ज्ञान क्रियाओं के जाननेवालों से तीनों विद्या सनातन दण्डनीति न्यायविद्या आत्मविद्या अर्थात् परमात्मा के गुण कर्म स्वभावरूप को यथावत् जाननेरूप ब्रह्मविद्या और लोक से वार्ताओं का आरम्भ (कहना और पूछना) सीखकर सभासद् वा सभापति होसकें। सब सभासद् और सभापति इन्द्रियों को जीतने अर्थात् अपने वश में रख के सदा धर्म में वर्त्तें और अधर्म से हटे हटाए रहें इसलिए रात दिन नियत समय में योगाभ्यास भी करते रहें क्योंकि जो जितेन्द्रिय कि अपनी इन्द्रियों (जो मन, प्राण और शरीर प्रजा है इस) को जीते विना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करने को समर्थ कभी नहीं हो सकता। दृढोत्साही होकर काम से दश और क्रोध से आठ

दुष्ट व्यसन कि जिनमें फँसा हुआ मनुष्य कठिनता से निकल सके उनको प्रयत्न से छोड़ और छुड़ा देवे। क्योंकि जो राजा काम से उत्पन्न हुए दश दुष्ट व्यसनों में फँसता है वह अर्थ अर्थात् राज्य धनादि और धर्म से रहित हो जाता है और जो क्रोध से उत्पन्न हुए आठ बुरे व्यसनों में फँसता है वह शरीर से भी रहित हो जाता है। काम से उत्पन्न हुए व्यसन गिनाते हैं देखो—मृगया खेलना, (अक्ष) अर्थात् चौपड़ खेलना, जुआ खेलनादि, दिन में सोना काम कथा वा दूसरे की निन्दा किया करना, मादक द्रव्य अर्थात् मद्य, अफीम भाँग, गाँजा, चरस आदि का सेवन, गाना, बजाना, नाचना वा नाच कराना सुनना और देखना, वृथा इधर उधर घूमते रहना, ये दश कामोत्पन्न व्यसन हैं। क्रोध से उत्पन्न व्यसनों को गिनाते हैं—"पैशुन्यम्" अर्थात् चुगली करना, द्रोह रखना, ईर्ष्या अर्थात् दूसरे की बड़ाई वा उन्नति देखकर जला करना, "असूया" दोषों में गुण, गुणों में दोषारोपण करना, "अर्थदूषण" अर्थात् अधर्मयुक्त बुरे कामों में धनादि का व्यय करना, कठोर वचन बोलना और विना अपराध कड़ा वचन वा विशेष दण्ड देना ये आठ दुर्गुण क्रोध से उत्पन्न होते हैं। जो सब विद्वान् लोग कामज और क्रोधजों का मूल जानते हैं कि जिससे ये सब दुर्गुण मनुष्य को प्राप्त होते हैं उस लोभ को प्रयत्न से छोड़े। काम के व्यसनों में बड़े दुर्गुण एक मद्यादि अर्थात् मदकारक द्रव्यों का सेवन, दूसरा पासों आदि से जुआ खेलना, तीसरा स्त्री व्यसन, चौथा मृगया खेलना ये चार महादुष्ट व्यसन हैं। और क्रोधजों में विना अपराध दण्ड देना, कठोर बोलना और धनादि का अन्याय में खर्च करना ये तीन क्रोध

से उत्पन्न हुए बड़े दुःखदायक दोष हैं। जो ये सात दुर्गुण दोनों कामज और क्रोधज दोषों में गिने हैं इनमें से पूर्व २ अर्थात् व्यर्थ व्यय से कठोर वचन, कठोर वचन से [अन्याय], अन्याय से दण्ड देना, इससे मृगया खेलना इससे जुआ अर्थात् द्यूत करना और इससे भी मद्यादि सेवन करना बड़ा दुष्ट व्यसन है। इस में यह निश्चय है कि दुष्ट व्यसन में फँसने से मर जाना अच्छा है क्यों कि जो दुष्टाचारी पुरुष है वह अधिक जियेगा तो अधिक २ पाप करके नीच २ [illegible] अर्थात् अधिक २ दुःख को प्राप्त होता जायगा और [illegible] व्यसन में नहीं फँसा वह मर भी जायगा तो भी सुख [illegible] जायगा इस लिये विशेष राजा और सब मनुष्यों को [illegible] है कि कभी मृगया और मद्यपानादि दुष्ट कामों में न [illegible] से पृथक् होकर धर्मयुक्त गुण कर्म स्वभावों में [illegible] काम किया करें। राजसभासद् और मन्त्री [illegible]—

स्वराज्य स्वदेश में उत्पन्न हुए [illegible], शूरवीर, जिनका लक्ष्य अर्थात् विचार [illegible] कुलीन, अच्छे प्रकार सुपरीक्षित, सात वा [illegible] "सचिवान" अर्थात् मन्त्री करे। क्योंकि [illegible] के बिना जो सुगम कर्म है वह भी एक के [illegible] हो [illegible] है [illegible] ऐसा है तो महान् राज्यकर्म एक [illegible] सकता है? [illegible] एक को राजा और एक की बुद्धि पर राज्य के कार्य [illegible] रखना ही बुरा काम है। [illegible] को [illegible]

[illegible] में [illegible] मन्त्रियों [illegible]

[illegible] (इन्हें) [illegible] किसी से [illegible]

[स्थान] स्थिति समय को देख के चुपचाप रहना अपने राज्य की रक्षा करके बैठे रहना (समुदयम्) जब अपना उदय अर्थात् वृद्धि हो तब दुष्ट शत्रु पर चढ़ाई करना (गुप्तिम्) मूल राजसेना कोश आदि की रक्षा (लब्धप्रशमनानि) जो २ देश प्राप्त हों उस उस में शान्तिस्थापन उपद्रवरहित करना इन छः गुणों का विचार नित्यप्रति किया करें। विचार करना कि उन सभासदों का पृथक् २ अपना २ विचार और अभिप्राय को सुनकर बहुपक्षानुसार कार्यों में जो कार्य अपना और अन्य का हितकारक हो वह करने लगना। अन्य भी पवित्रात्मा, बुद्धिमान, निश्चितबुद्धि, पदार्थों के संग्रह करने में अतिचतुर, सुपरीक्षित मन्त्री करे। जितने मनुष्यों से राज्यकार्य्य सिद्ध हो सके उतने आलस्यरहित बलवान और बड़े २ चतुर प्रधान पुरुषों को अधिकारी अर्थात् नौकर करे। इनके आधीन शूरवीर बलवान कुलोत्पन्न पवित्र भृत्यों को बड़े २ कर्मों में और भीरु डरनेवालों को भीतर के कर्मों में नियुक्त करे। जो प्रशंसित कुल में उत्पन्न चतुर, पवित्र, हावभाव और चेष्टा से भीतर हृदय और भविष्यत् में होने वाली बात को जानने-हारा, सब शास्त्रों में विशारद चतुर है, उस दूत को भी रक्खे। वह ऐसा हो कि राज काम में अत्यन्त उत्साह प्रीतियुक्त, निष्कपटी पवित्रात्मा, चतुर, बहुत समय की बात को भी न भूलने वाला, देश और कालानुकूल वर्त्तमान का कर्त्ता, सुन्दर रूपयुक्त, निर्भय और बड़ा वक्ता हो वही राजा का दूत होने में प्रशस्त है। किस २ को क्या २ अधिकार देना

११८ है —

अमात्य को दण्डाधिकार, दण्ड में विनय क्रिया अर्थात् जिससे अन्यायरूप दण्ड न होने पावे, राजा के आधीन कोश और राज-कार्य्य तथा सभा के आधीन सब कार्य्य और दूत के आधीन किसी से मेल व विरोध करना अधिकार देवे। दूत उसको कहते हैं जो फूट में मेल और मिले हुए दुष्टों को फोड़ तोड़ देवे। दूत वह कर्म करे जिससे शत्रुओं में फूट पड़े। वह सभापति और सब सभासद् वा दूत आदि यथार्थ से दूसरे विरोधी राजा के राज्य का अभिप्राय जान के वैसा प्रयत्न करे कि जिससे अपने को पीड़ा न हो। इस लिये सुन्दर जङ्गल धन धान्ययुक्त देश में (धनुर्दुर्गम) धनुर्धारी पुरुषों से गहन (महीदुर्गम) मट्टी से किया हुआ (अब्दुर्गम) जल से घेरा हुआ (वार्क्षम) अर्थात् चारों ओर वन (नृदुर्गम्) चारों ओर सेना रहे (गिरिदुगम) अर्थात् चारों ओर पहाड़ों के बीच में कोट बना के इनके मध्य में नगर बनावे। और नगर के चारों ओर (प्राकार) प्रकोट बनावे, क्यों कि उसमें स्थित हुआ एक वीर धनुर्धारी शस्त्रयुक्त पुरुष सौ के साथ और सौ दश हजार के साथ युद्ध कर सकते हैं इसलिए अवश्य दुर्ग का बनाना उचित है। वह दुर्ग शस्त्रास्त्र धन, धान्य, वाहन, ब्राह्मण जो पढ़ाने उपदेश करनेहारे हों (शिल्पी) कारीगर, यन्त्र नाना प्रकार की कला, (यवसेन) चारा घास और जल आदि से सम्पन्न अर्थात् परिपूर्ण हो। उसके मध्य मे जल वृक्ष पुष्पादिक सब प्रकार से रक्षित सब ऋतुओं में सुखकारक श्वेतवर्ण अपने लिये घर जिसमें सब राज-कार्य्य का निर्वाह हो वैसा बनवावे। इतना अर्थात् ब्रह्मचर्य से विद्या पढ के यहाँ तक राजकाम करके पश्चात् सौन्दर्य रूप गुणयुक्त

अपने हृदय को अतिप्रिय बड़े उत्तम कुल में उत्पन्न सुन्दर लक्षण-युक्त अपने क्षत्रियकुल की कन्या जो कि अपने सदृश विद्यादि गुण कर्म स्वभाव में हो उस एक ही स्त्री के साथ विवाह करे दूसरी सब स्त्रियों को अगम्य समझ कर दृष्टि से भी न देखे। पुरोहित और ऋत्विज् का स्वीकार इसलिये करे कि वे अग्निहोत्र और पक्षेष्टि आदि सब राजघर के कर्म किया करें और आप सर्वदा राजकार्य में तत्पर रहे अर्थात् यही राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात दिन राजकार्य्य में प्रवृत्त रहना और कोई राजकाम बिगड़ने न देना।

जो पुरुष (अर्थ) सुवर्णादि रत्न और (काम) में नहीं फँसते हैं उन्हीं को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करें वे वेद द्वारा धर्म का निश्चय करें क्योंकि धर्माऽधर्म का निश्चय विना वेद के ठीक २ नहीं होता।

इस प्रकार आचार्य अपने शिष्य को उपदेश करे और विशेष कर राजा इतर क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्र जनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावें। क्योंकि जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्या, धर्म, राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती। क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने पढ़ाने और क्षत्रियादि से जीविका को प्राप्त होके जीवन धारण कर सकते हैं। जीविका के आधीन और क्षत्रियादि के आज्ञादाता और यथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्राह्मणादि सब वर्ण पाखण्ड ही में फँस जाते हैं और जब क्षत्रियादि विद्वान् होते हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथ में चलते हैं और उन क्षत्रियादि विद्वानों के सामने पाखण्ड झूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते और जब क्षत्रियादि अविद्वान् होते हैं तो वे जैसा अपने मन में आता है वैसा ही करते कराते हैं। इसलिये ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहें तो क्षत्रियादि को वेदादि सत्य शास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें। क्योंकि क्षत्रियादि ही विद्या, धर्म, राज्य और लक्ष्मी की वृद्धि करनेहारे हैं [illegible] भिक्षावृत्ति नहीं करते इसलिये [illegible]

। जब सब वर्णों [illegible]

भी पाखण्डरूप अधर्मयुक्त मिथ्याव्यवहार को नहीं चला सक्ता इससे क्या सिद्ध हुआ कि क्षत्रियादि को नियम में चलाने वाले ब्राह्मण और सन्यासी तथा ब्राह्मण और सन्यासी को सुनियम में चलाने वाले क्षत्रियादि होते हैं। इसलिये सब वर्णों के स्त्री पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिये। अब जो २ पढ़ना पढ़ाना हो वह वह अच्छे प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है—परीक्षा पाँच प्रकार से होती हैं। एक-जो २ ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों से अनुकूल हो वह २ सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है। दूसरी जो २ सृष्टि क्रम से अनुकूल वह २ सत्य और जो २ सृष्टिक्रम से विरुद्ध है वह सब असत्य है। तीसरा—"आप्त" अर्थात् जो धार्मिक विद्वान, सत्यवादी, निष्कपटियों का संग उपदेश के अनुकूल है।वह २ ग्राह्य और जो २ विरुद्ध वह २ अग्राह्य है। चौथी—अपने आत्मा की पवित्रता विद्या के अनुकूल अर्थात् जैसा अपने को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है वैसे ही सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दुःख वा सुख दूँगा तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा। और पाँचवा—आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव

जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राणका शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के साथ अव्यवहित अर्थात् आवरण रहित सम्बन्ध होता है, इन्द्रियों के साथ मन का और मन के साथ आत्माके संयोग से ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं परन्तु जो व्यपदेश अर्थात् संज्ञासंज्ञी के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है वह ज्ञान न हो। जैसा किसी

नदी के प्रवाह की बढ़ती देख के ऊपर हुई वर्षा का,पुत्र को देख के पिता का,सृष्टि को देख के अनादि कारण का तथा कर्त्ता ईश्वर का और पाप पुण्य के आचरण देख के सुख दुःख का ज्ञान होता है इसी को 'शेषवत्' कहते हैं। तीसरा "सामान्यतोदृष्ट" जो कोई किसी का कार्य कारण न हो परन्तु किसी प्रकार का साधर्म्य एक दूसरे के साथ हो जैसे कोई भी बिना चले दूसरे स्थान को नहीं जा सकता वैसे ही दूसरों का भी स्थानान्तर में जाना बिना गमन के कभी नहीं हो सकता। अनुमान शब्द का अर्थ यही है कि "अनु अर्थात् प्रत्यक्षस्य पश्चान्मीयते ज्ञायते येन तदनुमानम्" जो प्रत्यक्ष के पश्चात् उत्पन्न जैसे धूम के प्रत्यक्ष करने बिना अदृष्ट अग्नि का ज्ञान कभी नहीं हो सकता।

जो प्रसिद्ध प्रत्यक्ष साधर्म्य से साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य ज्ञान की सिद्धि करने का साधन हो उसको उपमान कहते हैं। "उपमीयते येन तदुपमानम्" जैसे किसी ने किसी भृत्य से कहा कि "तू विष्णुमित्र को बुलाला" वह बोला कि "मैंने उसको कभी नहीं देखा" उसके स्वामी ने कहा कि "जैसा यह देवदत्त है वैसा ही वह विष्णुमित्र है" वा जैसी यह गाय है वैसी ही गवय अर्थात् नीलगाय होती है, जब वह वहाँ गया और देवदत्त के सदृश उसको देख निश्चय कर लिया कि यही विष्णुमित्र है उसको ले आया। अथवा किसी जङ्गल में जिस पशु को गाय के तुल्य देखा उसको निश्चय कर लिया कि इसी का नाम गवय है।

जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय,

सत्यवादी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष जैसा अपने आत्मा में जानता हो और जिससे सुख पाया हो उसी के कथन की इच्छा से प्रेरित सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेष्टा हो अर्थात [जो] जितने पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होकर उपदेष्टा होता है। जो ऐसे पुरुष और पूर्ण आप्त परमेश्वर के उपदेश वेद हैं उन्हीं को शब्द प्रमाण जानो।

जो इतिह अर्थात इस प्रकार का था उसने इस प्रकार किया अर्थात् किसी के जीवन चरित्र का नाम ऐतिह्य है।

जैसे किसी ने किसी से कहा कि "बद्दल के होने से वर्षा और कारण के होने से कार्य उत्पन्न होता है" इससे विना कहे यह दूसरी बात सिद्ध होती है कि विना बद्दल वर्षा और विना कारण के कार्य कभी नहीं हो सकता।

कोई कहे कि "माता पिता के विना सन्तानोत्पत्ति, किसी ने मृतक जिलाये, पहाड़ उठाये, समुद्र में पत्थर तराये, चन्द्रमा के टुकड़े किये, मनुष्य के सींग देखे और बन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह किया" इत्यादि सब असम्भव हैं क्योंकि ये सब बातें सृष्टिक्रम से विरुद्ध हैं। और जो बात सृष्टिक्रम के अनुकूल हो वही सम्भव है।

जैसे किसी ने किसी से कहा कि "हाथी ले आ" वह वहाँ हाथी का अभाव देखकर जहाँ हाथी था वहां से ले आया। ये आठ प्रमाण हैं। इनमें से जो शब्द से ऐतिह्य और अनुमान में अर्थापत्ति अभाव की गणना करें तो चार प्रमाण

इन पाच प्रकार की परीक्षाओं से सत्यासत्य का निश्चय मनुष्य कर सकता है अन्यथा नहीं।

जब मनुष्य धर्म के यथायोग्य अनुष्ठान करने से पवित्र होकर 'साधर्म्य" अर्थात् जो तुल्य धर्म हैं जैसा पृथिवी जड़ और जल भी जड़ "वैधर्म्य" अर्थात् पृथिवी कठोर और जल कोमल इसी प्रकार से द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छ पदार्थों के तत्वज्ञान से अर्थात् स्वरूपज्ञान से "नि श्रेयसम्" मोक्ष को प्राप्त होता है।

———

प्रभाकर परीक्षा की सहायक पुस्तकें

प्रबंध-प्रभाकर

(दूसरा संस्करण)

[ले०—श्री गुलाबराय एम० ए०]

इस पुस्तक में १६२४ से लेकर अब तक के प्रभाकर परीक्षा में आये हुए निबन्ध दिए गये हैं। साथ ही कुछ अन्य साहित्यिक लेख भी जोड़ दिये गये हैं। निबन्धों की भाषा, सरल होने पर भी परिष्कृत है, जो कि विद्यार्थियों के लिए आदर्श कही जा सकती है। मू० १।।)

मुद्राराक्षस नाटक सटिप्पण

(स०—श्री धर्मचन्द्र विशारद)

(तीसरा संस्करण)

विद्यार्थी उपयोगी सुसंपादित संस्करण। इसमें सब पद्यों के अर्थ, नाटक के पात्रों का परिचय, नाटक की आलोचना, नाटक सम्बन्धी परिभाषाएँ, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की विस्तृत जीवनी तथा उनकी अन्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। विद्यार्थियों के लिए यह सर्वोत्तम संस्करण है। इसके लेने पर अन्य किसी सहायक पुस्तक की आवश्यकता नहीं रहती। पुस्तक लेते समय श्री धर्मचन्द्र विशारद का नाम देख लें। मूल्य १)

हिन्दी भवन, लाहौर

प्रभाकर परीक्षा की सहायक पुस्तकें

प्राचीन गद्य की कुंजी

इसमें प्राचीन गद्य में दिये गये गद्य लेखों के कठिन शब्दों का अर्थ प्रत्येक लेखक की लेखन शैली पर विचार तथा उसका साहित्य में स्थान बड़े विस्तार से दर्शाया गया है। शुद्धता, तथा स्पष्टता के लिए हिन्दी भवन लाहौर का नाम ही पर्याप्त है। मू० ।।।)

नवनिधि की कुंजी

(लेखक—श्री शंभुदयाल सकसेना साहित्यरत्न)

इसमें नवनिधि के सब पद्यों के कठिन शब्दों के अर्थ बड़ी सरल भाषा में विस्तार पूर्वक दिये गये हैं। प्रसंगवश आने वाली कहानियाँ तथा कवियों की शैली पर आलोचनात्मक विचार देकर विद्वान लेखक ने पुस्तक की महत्ता बढ़ा दी है। श्री शम्भुदयाल जी कुंजियाँ लिखने में अपना सानी नहीं रखते। उनकी लिखी यह कुंजी शुद्धता, स्पष्टता आदि में अद्वितीय है। मूल्य ।।)

प्रभाकर प्रश्नपत्र आदर्श उत्तर सहित

[सं० देवचन्द्र विशारद]

इसमें सन् १९३४ से आजतक के प्रश्न संगृहीत हैं। विद्यार्थियों की सुविधा के लिए १९३६ से आजतक के प्रश्न के उत्तर भी दिए गए हैं। उत्तर प्रामाणिक हैं। मूल्य २।)

हिन्दी भवन, लाहौर

प्रभाकर परीक्षा की सहायक पुस्तकें

आलोचना-समुच्चय

(लेखक—श्री रामकृष्ण शुक्ल एम ए 'शिलीमुख'
प्रोफेसर, महाराजा कालिज, जयपुर)

इसमें विद्वान लेखक ने हिन्दी के प्राय सब प्रमुख महाकवियों—कबीर, सूर, जायसी, तुलसी, मीरा, केशव, बिहारी, भूषण हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण और प्रसाद—पर गभीर आलोचनात्मक निबंध लिखे हैं, जिनमें कवियों के काव्य, और उनकी विशेषताओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है, तथा कवियों की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है। विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षा के विद्यार्थियों, विशेषत प्रभाकर के परीक्षार्थियों के लिए आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य पुस्तक। पृष्ठ २६०—मूल्य २)

छन्द-रत्नावली की कुंजी

इसमें छन्द रत्नावली में आए सब छन्दों को सरल और सुबोध भाषा में समझाया गया है। मूल्य ।≈) मात्र।

हिंदी